# मुक्तिबोध की कहानियाँ

जवाहरलाल नेहरू, विश्वविद्यालय के भारतीय भाषा केन्द्र की एम० फिल० उपाधि के लिए
प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध

शोध निर्देशिका
(डा० (श्रीमती) सावित्री चन्द्र शोभा)

**ज्योति व्यास**

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा संस्थान
जवाहरलाल नेहरू, विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067
1983

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
भारतीय भाषा केन्द्र

न्यू मेहरौली रोड
नयी दिल्ली : 110067

प्रमाणित किया जाता है कि ज्योति व्यास द्वारा प्रस्तुत 'मुक्तिबोध की कहानियां' शीर्षक लघु शोध-प्रबन्ध में प्रयुक्त सामग्री का इस विश्वविद्यालय अथवा अन्य विश्वविद्यालय में इसके पूर्व किसी भी प्रदेय उपाधि के लिए उपयोग नहीं किया गया है । यह सर्वथा मौलिक है ।

4.1.84

(डा० नामवर सिंह)
अध्यक्ष
भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली - 110067

(डा०(श्रीमती) सावित्री चन्द्र 'शोभा')
शोध-निर्देशिका
भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067

# विषय-सूची


| | | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|
| प्राक्कथन | : | (क) से (घ) |
| प्रथम अध्याय | : मुक्तिबोध की जीवन यात्रा और युगीन परिस्थितियाँ | 1 - 35 |
| द्वितीय अध्याय | : समकालीन कहानी और मुक्तिबोध | 36 - 58 |
| तृतीय अध्याय | : मुक्तिबोध की कहानी-विकास यात्रा (1936 से 1964) | 59 - 89 |
| चतुर्थ अध्याय | : मुक्तिबोध की कहानियों का कथ्य और स्थापत्य (शिल्प) | 90 - 118 |
| पंचम अध्याय | : विशिष्ट कहानियों का विश्लेषण | 119 - 142 |
| उपसंहार | : | 143 - 144 |
| परिशिष्ट | : | 145 - 149 |

# प्राक्कथन

मुक्तिबोध की चर्चा मूलत: कवि के रूप में ही हुई है । मुक्तिबोध की मृत्यु के उपरान्त मुक्तिबोध की कविताओं की चर्चा जितनी हुई उतनी बहुत कम लेखकों की होती है । प्रश्न यह उठता है कि मुक्तिबोध का अचानक यूं महत्वपूर्ण हो उठने के क्या कारण थे ? सन् 1964 से चर्चा का विषय बने मुक्तिबोध पर बहुत से लेख, टिप्पणियां लिखे गये । उनके द्वारा रचित कविताओं में फैंटसी और रचना प्रक्रिया के सवाल पर लम्बी-लम्बी बहसें हुईं और अन्त में मुक्तिबोध सशक्त रचना प्रक्रिया के स्वामी घोषित किये गये जो 'अभिव्यक्ति के खतरों' को उठाने का साहस कर सके थे । यहां तक कि कोई भी विषय जो नयी कविता से जुड़ा था अनिवार्य रूप से मुक्तिबोध से जुड़ा हुआ था । आज भी किसी भी साहित्यिक गोष्ठी में मुक्तिबोध का लेखक उपस्थित रहता है किन्तु फिर भी मुक्तिबोध की जितनी चर्चा हुई वह कवि या आलोचक के रूप में गद्य में उनकी 'एक साहित्यिक की डायरी' की चर्चा प्राय: होती रही है । मुक्तिबोध का कवि और आलोचक रूप ही अधिक उभरकर सामने आया । उनका कथाकार रूप उपेक्षित ही रहा यदि कहीं छुट-पुट रूप से चर्चा हुई भी तो वह उनकी दो चार कहानियों तक ही सीमित रहा । मुक्तिबोध जैसे लेखक के बारे में जब यह कहा जाता है कि उनकी कविताएं, गद्य, आलोचना, निबन्ध, कहानियां सब विधाएं बिना किसी टकराहट के चलती हैं और उनकी कविता और कहानी का तथ्य एक ही है तब उनकी कहानियों का तथ्य क्या है ? यह जानना भी बहुत महत्वपूर्ण हो उठता है, एक कवि यदि कहानीकार भी है तो उनकी चर्चा केवल कवि के रूप में करना उसकी एकांगी आलोचना है । कहानी कविता से अधिक मूर्त कला है । क्या कारण है कि मुक्तिबोध को कहानीकार भी होना पड़ा ? कहानी के माध्यम से मुक्तिबोध क्या कहना चाहते थे ? इस बात की

पड़ताल के लिए उनकी कहानियों का विश्लेषण आवश्यक था जो कि अब तक उपेक्षित ही रहा है । यह लघु शोध प्रबन्ध शोधार्थी का एक दृढ़ प्रयास है । मुक्तिबोध की उपेक्षित कहानियों के वैभव को सामने लाने का । अधिक से अधिक कहानियों को समेटने का प्रयास करने पर भी मुक्तिबोध की अधूरी कहानियों की चर्चा कर ही पाई है जो कि लघु शोध प्रबन्ध के आकार की सीमा के कारण संभव भी नहीं था । फिर भी सभी पूर्ण कहानियों को लेने का प्रयास किया है ।

प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध को मैंने पांच अध्याय में बांटा है । प्रथम अध्याय में मुक्तिबोध की चर्चा की गई है जो उन कहानियों के कथानक निर्माण में सहायक हुई है ।

द्वितीय अध्याय में 'समकालीन हिन्दी कहानी और मुक्तिबोध (1936-1964) के अन्तर्गत हिन्दी कहानी की विकास यात्रा (आरंभिक हिन्दी कहानी से समकालीन कहानी और उसमें मुक्तिबोध के योगदान की चर्चा की गई है ।

तृतीय अध्याय में 'मुक्तिबोध की कहानी की विकास यात्रा ' को रखा गया है । मुक्तिबोध की कहानी की इस विकास यात्रा को आरंभ, मध्य और उत्तरकाल में बांटा गया है । उनकी जीवनदृष्टि, विश्वदृष्टि वर्गचेतना आदि के विकास का क्रमिक अध्ययन किया गया है । मुक्तिबोध कवि थे अत: उनकी कहानियां और कविताओं के संबंधों को स्पष्ट करने के लिए 'मुक्तिबोध की काव्य यात्रा : एक समानान्तर अध्ययन' शीर्षक के अन्तर्गत अलग से चर्चा की गई है ।

चतुर्थ अध्याय मुक्तिबोध की कहानियों के वस्तु तथा शिल्प को विस्तार से लिया है। उनकी कहानियों का वस्तु, कहानियों की मार्मिक संरचना, विशिष्ट प्रतीकों का अध्ययन, कथानक तथा चरित्र। कहानी में निबन्ध, कविता और आलोचना के तत्वों का समावेश। मुक्तिबोध की विचारधारा और मुक्तिबोध की कला आदि शीर्षक के अन्तर्गत कहानियों का विश्लेषण किया गया है।

पंचम अध्याय मुक्तिबोध की विशिष्ट कहानियों का विश्लेषण करता है। विपात्र की चर्चा अधिक विस्तार से की गई है। विपात्र को उपन्यास न मान इसे लम्बी कहानी के भीतर स्थान दिया है। क्लाड ईथरली, सतह से उठता आदमी, काठ का सपना ' आदि महत्वपूर्ण कहानियों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

लघु शोध प्रबन्ध के कलेवर को देखते हुए बहुत सी बातें छूट गई हैं जो मुक्तिबोध की कहानियों के विषय में कही जा सकती थी। कुछेक मान्यताओं की चर्चा भर करके छोड़ दिया गया है। कुछेक विशिष्ट कहानियों की ही विस्तार से चर्चा हो पाई है किन्तु उनके चुनाव में इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि वह मुक्तिबोध की कहानियों की मूल संवेदना और वस्तु वैविध्य का प्रतिनिधित्व करती है।

इस प्रबन्ध की रचना में अपने माता-पिता से जो प्रेरणा और सहायता मिली है उसकी मैं हृदय से आभारी हूं। 'पुष्पांजन ' जी का जो सहयोग मुझे प्राप्त हुआ उसके प्रति भी मैं आभार प्रकट करती हूं। डा० केदारनाथ सिंह ने समय समय पर मुझे विषय के सन्दर्भ में चर्चा करके प्रेरणा दी उसके लिए आभारी हूं। निःसन्देह डा० सावित्री चन्द्र 'शोभा ' के

कुशल नेतृत्व के बिना यह शोध प्रबन्ध पूरा हो पाना कठिन था। उनके मार्ग निर्देशन के प्रति मैं विशेष रूप से आभारी हूं।

स्वच्छ एवं विशुद्ध टंकण के लिए श्री बरमेश्वर जी की आभारी हूं।

ज्योतिव्यास

ज्योति व्यास

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

दिसम्बर, 1983 ई०।

# प्रथम अध्याय

## मुक्तिबोध की जीवन यात्रा और युगीन परिस्थितियाँ

मुक्तिबोध जैसा संघर्षात्मक जीवन व्यतीत करने वाला ही ऐसा साहित्य सृजन कर सकता है जैसा मुक्तिबोध ने रचा । कैसा जीवन और कैसा साहित्य सृजन ? संघर्ष और यातनाएं तो वर्तमान लेखक की नियति है तब ऐसी कौन सी जिन्दगी मुक्तिबोध ने जी जिससे उनका सारा साहित्य सच्चाइयों और षड्यंत्रों की खुली पुस्तक बन सामने आया । नि:सन्देह → मुक्तिबोध का जीवन एक चुनौती था जिसने मुक्तिबोध के पात्रों को जन्म दिया । अन्धेरे में बैठे पात्रों को उनकी समस्त बारीकियों समेत देखा । इन पात्रों के विवेक, इन कथाओं के कथानक के कुछ अंशों का मूल्यांकन करने के लिए मुक्तिबोध की जिंदगी जिसमें वह अपनी 'वह खोयी हुई परम अभिव्यक्ति अनिवार आत्मसम्भवा ' खोजते रहे पर एक दृष्टिपात सार्थक → होगा ।

13 नवम्बर 1917 को पुराने ग्वालियर राज्य के श्योपुर मध्यप्रदेश में मुक्तिबोध का जन्म हुआ[1] मुक्तिबोध उपनाम के सन्दर्भ में प्रचलित है कि यह नाम पूर्वजों द्वारा रचित 'मुरधबोध ' या 'मुक्तिबोध ' किसी आध्यात्मिक ग्रन्थ लिखे जाने के बाद वंश के साथ जुड़ गया ।[2] संभवत: खिलजी काल में कण्वेदी ब्राह्मणों में किसी पूर्वज ने मुरधबोध या मुक्तिबोध नाम का कोई आध्यात्मिक ग्रन्थ लिखा था । कालान्तर में उसी पर वंश का नाम चल पड़ा । अंग्रेजों का शासन आने पर गजानन मुक्तिबोध के परदादा वासुदेव जल गांव (खान-देश) से नौकरी के लिए ग्वालियर आए । उनके दादा टाँक में दफ्तरदार थे और अपने फारसी ज्ञान के कारण मुन्शी जी के नाम

---

1- राष्ट्रवाणी फरवरी 1965 : एक जीवन यात्रा -विजया बैद्य । उनके जन्म स्थान का नाम शिवपुरी की 'चांद का मुंह टेढ़ा है ' में श्री शमशेर बहादुर सिंह ने अंकित किया है ।

2- 'चांद का मुंह टेढ़ा है' कवि मुक्तिबोध का परिचय :शमशेर बहादुर सिंह

से मशहूर थे ।[1]

मुक्तिबोध के पिता माधवराव मुक्तिबोध ग्वालियर राज्य के पुलिस विभाग में अधिकारी थे । इनकी मां ग्वालियर के इसागढ़ (जो अब गुना जिले में है ) की थीं । मुक्तिबोध चार भाई हैं सबसे छोटे मराठी के प्रतिष्ठित कवि हैं ।

मुक्तिबोध का बचपन भविष्य की उथल-पुथल, संघर्ष और यातनाओं से अनिभिज्ञ और सुख समृद्धि से पल्लवित था । सुख सुविधाओं और मां-बाप के प्यार से सम्पन्न मुक्तिबोध के बचपन की झलक उनके छोटे भाई शरच्चन्द्र मुक्तिबोध के लेख में देखी जा सकती है । 'मेरे बड़े भाई' नामक लेख में वह अपनी मां का एक संस्मरण प्रस्तुत करते हैं, तब भाई साहब चार पांच साल के थे । पिताजी सब इंस्पेक्टर पुलिस थे । भाई साहब को तब थानों के बराण्डों में बिठा दिया जाता था । एक सिपाही दूसरे सिपाही को पीटने का बहाना किया करता । दूसरा मानो डरा हुआ भाई साहब की शरण में आता और कहता ' देखो रज्जन भइया हमें मारा ' और झूठ मूठ रोने लगता , रज्जन भइया फौरन कुर्सी से कूद पड़ते । वह सिपाही छिपता फिरता फिर पकड़ में आ जाता , उनकी मार खाता । वहीं से पिताजी यह देखकर अपनी घनी घनी मूंछों में से हंसते रहते ।'[2]

मुक्तिबोध हठी थे । इस हठ की जड़े बहुत गहरी और बचपन से ही अपने को जमा चुकी थीं ।' भाई साहब बड़े जिदी बन गये थे और घण्टों रोया करते थे । बाहर अर्दली संभालते और घर बार नानी । रज्जन की गैया आव-आव कह कर वह घण्टों उन्हें झुलाती रहती । शाम को बाबा गाड़ी में बैठाकर

---

1- चांद का मुंह टेढ़ा है : कवि मुक्तिबोध का परिचय: शमशेर बहादुर सिंह

2- राष्ट्रवाणी: फरवरी 1965 : मेरे बड़े भाई साहब -शरच्चन्द्र मुक्तिबोध ।

उन्हें हवालोरी के लिए भेजा जाता । सातवें आठवें तक उन्हें अर्दली कपड़े पहनाया करते । पिताजी पुलिस सब इंस्पेक्टर थे यानी गांव के राजा थे । इसलिए भाई साहब की खुशामद हर जगह होती थी । जब वे कुछ बड़े हुए तब बाबू साहब कहकर उन्हें पुकारने की आज्ञा माँ ने दे दी । हम लोग उन्हें इसी नाम से पुकारते थे (हालांकि यह साहब मैंने कभी पसन्द नहीं किया लेकिन बड़े होकर भाई साहब ने मेरे नाम के साथ भी साहब जोड़ दिया ) हमारे बाबा की अपने पोते पर असीम कृपा थी । उनकी हर छोटी जिद वे पूरी करते थे । बाबा की नौकरी जिस गांव में होती वहीं बड़े भैया महीना दो महीना रहने जाया करते थे और वहां से सेवा-मिठाई से उनकी पूजा किए बगैरह कभी प्रसन्न नहीं होते थे । जब भाई-साहब ग्वालियर स्टेट की मिडिल परीक्षा पास हुए तब तो उनकी प्रशंसा करते माता-पिता और आस-पड़ोस के नहीं अघाते थे । उनकी सब जरूरतें पूरी की जाती थीं । हम छोटे भाइयों का अस्तित्व उनके लिए नहीं के बराबर था ।"[1]

ग्वालियर से मिडिल परीक्षा पास कर मुक्तिबोध ने मैट्रिक और इण्टरमीडिएट (1935) में उज्जैन के माधव कालेजिएट हाई स्कूल से पास किया (1935) में होल्कर कालेज इन्दौर से बी० ए० किया और एक लम्बे अन्तराल के बाद सन् 1954 में एम० ए० पास किया । पिता की अदम्य इच्छा पुत्र को वकील के रूप में प्रतिष्ठित देखने की थी किन्तु मुक्तिबोध को जीवन की वकालत करनी थी अपने ढंग से । शमशेर ने चांद का मुंह टेढ़ा है की भूमिका में लिखा है 'यह तीसरे दशक के अंतिम वर्ष थे राष्ट्रीय और सांस्कृतिक बेचैनी और ऊहापोह के वर्ष अस्तु यह कमाना चाहता था ज्ञान - धन नहीं, खोज रहा था सम्भावनाओं की लड़ियां नहीं, नयी दृष्टि और अनुभव नए

---

1- राष्ट्रवाणी : फरवरी 1965, मेरे बड़े भाई साहब - शरच्चन्द्र मुक्तिबोध ।

युग के अनुभव और काव्य की विलक्षण अनुभूतियां ।"[1] बचपन से ही ज्ञानार्जन की ललक उनमें दिखाई पड़ती है । उन्हें मनोविज्ञान, तर्कशास्त्र और दर्शन की समस्याओं में रस मिलने लगा था । वे गोर्की फ्लावेयर और दोस्तायवस्की में खोये रहते थे । बीस इक्कीस की इस उम्र में यह युवक रूढ़ी परम्पराओं की बात सोच रहा था । आने वाले युग की बात सोच रहा था । पूरी आस्था के साथ यह उपेक्षितों और दलितों के साथ था । "उपेक्षितों-दलितों के लिए उसकी सहानुभूति तेजी से बढ़ रही थी कि उसके जीवन में आया प्रेम ऐसा प्रेम जो गहरा और सुन्दर होने के साथ ही स्थाई भी था ।"[2] समस्त विरोधों को झेल कर उन्होंने 1939 में विवाह कर लिया पारिवारिक रूढ़ियों सामाजिक अवरोधों किसी को उन्होंने स्वीकार नहीं किया । डा०महेश भटनागर ने इसे उनका प्रथम सामाजिक विद्रोह कहा " मुक्तिबोध का सामाजिक विद्रोह उनके विवाह के रूप में पहली बार प्रकट हुआ ।"[3]

पिता के रिटायरमेंट ने मुक्तिबोध के आर्थिक संघर्ष को बढ़ा दिया । घर में विपन्नता परिवार का स्थाई सदस्य बन गई । इसी वर्ष बी०ए० पास करके उन्होंने उज्जैन के माडर्न स्कूल में अध्यापकी से जीवन संघर्ष आगे बढ़ाया । कार्यक्षेत्र-मुक्तिबोध केवल पाठक नहीं थे हर पढ़ी हुई रचना लेख पर बहस करना चाहते थे । लिखित विचारों को उनकी स्क्रीनिंटरी कैनाल की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता । कई रासायनिक क्रियाओं द्वारा सार्थक-निरर्थक की छटाई होती और फिर वो विचार मुक्तिबोध अपने ढंग से "एसिमिलेट" करते । इसके लिए उन्हें मित्र मण्डली भी सहज ही में मिल गई और सामग्री भी । उज्जैन में उन्हीं दिनों डा० पांचवे माधव कालेज में अध्यापक होकर

---

1- चांद का मुंह टेढ़ा है : मुक्तिबोध का परिचय : शमशेर बहादुर सिंह पृष्ठ- 13

2- गजानन माधव मुक्तिबोध और उनकी साहित्य सेवा -डा० पांचवे नवभारत टाइम्स -2 अगस्त 1964 ।

3- गजानन माधव मुक्तिबोध : जीवन और काव्य : डा० महेश भटनागर पृ०-45

आ गए थे । उसी समय का एक तत्कालीन परिदृश्य को उजागर करता है । "माधव कालेज के सामने पनवाड़ी की दुकान पर विप्लव (यशपाल, लखनऊ वालों का) बिकने लगा था । हमारी बहस गांधी और मार्क्स को लेकर होती । संघर्ष पाक्षिक (आचार्य नरेन्द्र देव द्वारा सम्पादित के 26 जनवरी 1940 के अंक में मेरी "गांधी और मार्क्स" नाम की लम्बी कविता छपी थी और मुक्तिबोध मेरी आध्यात्मिक शब्दावली का खासा मज़ाक उड़ाया करते थे । मुक्तिबोध को मूल में पढ़कर अभिभूत हुए थे । हमारी कई संध्याएं लम्बी लम्बी तार्किक बहसों में बीती थी ।"[1]

मुक्तिबोध की यह प्रवृत्ति उनके कथा पात्रों में देखी जा सकती है लम्बी → सार्थक बहसें उनकी कहानियों का हिस्सा है । छोटी से छोटी कहानियों में एक बहस है जो या चलती है या बहस को चला देती है । →

विश्व में उथल-पुथल मची हुई थी । क्रांतियों और युद्धों का दौर था । युवक सचेत हो उठा था , शा, हक्सन, रसेल, बर्गसा, मार्क्स, रवीन्द्रनाथ, गान्धी उनके विचारों को प्रभावित कर रहे थे । लम्बी बहसों का दौर था गैरकानूनी रूसी क्रांति और भारतीय क्रांतिकारियों की कहानियां पढ़ी जा रही थीं अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर यूरोप में फासिज्म , स्पेन का गृहयुद्ध, भारत का स्वतंत्रता संग्राम, सत्याग्रह के दृश्य और ध्वनियाँ थीं । युवक उत्तेजित थे । मुक्तिबोध जैसे युवक अपने युग की चेतना से पूरी तरह प्रभावित थे । 1940 में मुक्तिबोध शुजालपुर नामक स्थान (जो उज्जैन और भोपाल रेलवे लाइन का मध्यवर्ती स्टेशन है ) के शारदा शिक्षा सदन में अध्यापक हो गये । डा० नारायण विष्णु जोशी अपने संस्मरण में लिखते हैं "स्वर्गीय रामचन्द्र चौबे ने शारदा शिक्षा सदन की स्थापना की थी और शारदा शिक्षा सदन वह

---

1- राष्ट्रवाणी: फरवरी 1965 गजानन माधव मुक्तिबोध और उनकी साहित्य सेवा : डा० मांचवे ।

स्थान था जहां मेरे (जोशी जी तथा कवि (मुक्तिबोध) के अन्तर्मन में ध्येयवादिता का संचार हुआ तथा धीरे-धीरे वह साकार रूप धारण करने लगी । केवल ढाई वर्षों तक ही हम साथ रहे किन्तु उस काल में आध्यात्मिकता की जिस गहराई तक पहुंचे उसके संस्मरण हमारे जीवन की अमूल्य निधि है ।"[1]

प्रयोगवाद और तार सप्तक कवियों का जिस समय विकास हुआ यानी 1940-42 के आस-पास उस समय मुक्तिबोध शुजालपुर में थे । डा० जोशी के अनुसार "जहां तक मेरा ख्याल है तार सप्तक की अधिकांश कविताएं मुक्तिबोध द्वारा शुजालपुर में ही लिखी गई थीं ।"[2] जो कि अत्याधिक महत्वपूर्ण था । डा० मटनागर के अनुसार "उस संग्रह में मुक्तिबोध का योगदान उस समय सबसे प्रौढ़ चाहे न हो, मगर शायद सबसे मौलिक था । दुरूह न होते हुए बौद्धिक, बौद्धिक न होते हुए भी रोमानी ।"[3] सन् 1942 में मुक्तिबोध शारदा सदन के बन्द होने से उज्जैन चले गये वहां उन्होंने युवा विकासशील प्रतिभाओं को प्रोत्साहित, प्रेरित और सुसंबद्ध किया तथा "प्रगतिशील लेखक संघ" की नींव डाली । प्रगतिशील लेखक संघ के अध्यक्ष श्री रघुनाथ सावसे के शब्दों में "हम सभी उस समय मिलने के ख्याल से एक दूसरे से मिलते तो थे तथा मुक्तिबोध के विचारों ने हम सभी तरुण लेखकों में एक वैचारिक संघर्ष छेड़ दिया, जिसके परिणाम में अधिक अध्ययन और चिन्तन की ओर लेखकगण अग्रसर हुए । धीरे-धीरे विचार का स्वर बढ़ता गया, सामूहिक चर्चाओं के फलस्वरूप चिन्तन की दिशाएं बदलना प्रारंभ हुआ ।

---

1- राष्ट्रवाणी : फरवरी 1965: कविमुक्तिबोध के संस्मरण: डा० नारायण विष्णु जोशी ।

2- -- वही -- ,, ,,

3- मुक्तिबोध : जीवन और काव्य : डा० महेश मटनागर , पृष्ठ-16

जीवन के प्रति पुराने विश्वास और मान बदल गये । परन्तु प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना का एक कारण और भी था जो एक विशेष महत्व रखता है । मध्य भारत में लेखकों के दो दल हो गये थे और ये दो दल थे -- रीतिवादी व प्रगतिवादी । प्रथम में थे इन्दौर के श्री वीरेन्द्र कुमार जैन शान्तिप्रसाद वर्मा, प्रभागचन्द्र शर्मा आदि और दूसरे में थे श्री मुक्तिबोध संघु, डा० नारायण विष्णु जोशी, प्रा० प्रभाकर माचवे तथा अन्य तरुण कलाकार । इस विचार परिवर्तन के लिए महायुद्ध का विस्फोट तथा तद अन्य विश्व समाज जीवन में प्रमुख हलचलें जिम्मेदार थीं । एक ओर राष्ट्रीय संकट दूसरी ओर फासिस्ट आक्रमण और बंगाल की भूखमरी। इन दोनों घटनाओं ने हर जिम्मेदार बुद्धिजीवी को झकझोर दिया । मानवता पर फासिस्टवाद का हमला भारतीय को ही नहीं वरन् दुनिया के बुद्धिजीवियों को चुनौती थी जो मानवता के कल्याण के लिये साहित्य सृजन कर रहे थे । सन् 1944 के अन्त में प्रगतिशील लेखक संघ ने फासिस्ट विरोधी लेखक कान्फ्रेंस का आयोजन किया जो राहुल सांकृत्यायन जी की अध्यक्षता में हुई थी । लेखकों के दायित्व पर मुक्तिबोध ने स्वयं भी एक निबन्ध उसमें पढ़ा था । इस प्रकार मुक्तिबोध आत्मा थे । इसमें कोई शक नहीं कि मालवा में प्रगतिशील साहित्यिक चेतना का शंखनाद गजानन माधव मुक्तिबोध के प्रयत्नों का ही फल था ।"[1]

1955 में मुक्तिबोध बनारस चले गये वहां वे प्रसिद्ध पत्रिका "हंस" के सम्पादकीय विभाग में सम्मिलित हो गये जो कि त्रिलोचन शास्त्री निकाला करते थे । वहां वे सब प्रकार के कार्य किया करते थे । सम्पादन से लेकर डिस्पैचर तक का कार्य उन्होंने किया । बनारस से मुक्तिबोध जबलपुर चले गये ।

---

1- राष्ट्रवाणी : फरवरी 1965, मुक्तिबोध उज्जैन में - श्री रघुनाथ तापसे ।

वहाँ उनकी नियुक्ति हितकारिणी हाई स्कूल में अध्यापक पद पर हो गई। यह काल सम्प्रदायिक दंगे का था। मुक्तिबोध रात्रि में दैनिक जय हिन्दी में सम्पादन कार्य करते थे। जबलपुर में ही श्री वसन्त पुराणिक द्वारा सम्पादित 'समता' द्वैमासिक में भी मुक्तिबोध ने योग दिया हालांकि उसके केवल दो अंक सम्पादित किए गये और प्रकाशन केवल एक का ही संभव हो सका।

1948 तक मुक्तिबोध जबलपुर से नागपुर चले गये। यहीं पर उन्होंने अपनी श्रेष्ठ कविताओं की रचना की। मुक्तिबोध की व्यक्तिगत जिन्दगी के सर्वाधिक संघर्षमय दिन भी यहीं थे। किन्तु मुक्तिबोध हमेशा जिन्दगी पर हावी रहे वह मरते मर गए किन्तु टूटे नहीं। नागपुर से ही 'कृष्णानन्द सोख्ता' का साप्ताहिक 'नया खून' पत्रिका निकलती थी। मुक्तिबोध उसी में कुछ कालम लिखने लगे थे। इसी दौरान उन्होंने कामायनी एक पुनर्मूल्यांकन लिखा और प्रकाशित कराया। उनकी एक साहित्यिक की डायरी 'वसुधा' में धारावाहिक रूप से निकलती रही जो बाद में 1964 में भारतीय ज्ञानपीठ से पुस्तकार रूप में प्रकाशित हुई। इन दो कृतियों ने उन्हें आलोचना के क्षेत्र में भी प्रतिष्ठित कर दिया।

मुक्तिबोध ने आंखों से अपने समय में अमानवीय अत्याचार देखा था नागपुर में वे शुक्रवारी में तिलक की मूर्ति के पास ही गली में था। एम्प्रेस मिल मे मजदूरों पर गोली काण्ड के समय वह रिपोर्टर की हैसियत से वहां मौजूद थे। उस समय की उनकी बहुत सी रचनाएं अनेक सन्दर्भों में अपने को समेटे हुए हैं। अन्धेरे में कविता पढ़ते ही सारे दृश्य उजागर हो उठते हैं। 1949 में वे इलाहाबाद गये। वहां उनका सिलसिला कुछ जमा नहीं। इसके पश्चात उन्होंने 1954 में एम० ए० पास किया। आकाशवाणी नागपुर में भी मुक्तिबोध ने मासिक कान्ट्रैक्ट पर कुछ दिन कार्य किया। 1956 में उन्होंने 'नया खून'

का सम्पादन कार्य सम्भाला तथा सारथी ' में भी लिखते रहे । 1958 में वे दिग्विजय महाविद्यालय राजनन्दन गांव में प्राध्यापक नियुक्त किये गये । यही मुक्तिबोध की समस्त जिन्दगी का सबसे सुखी काल था । किन्तु यहां से फिर मुक्तिबोध कहीं नहीं जा सके । मृत्यु के कुछ माहपूर्व तक मुक्तिबोध राजनन्दन गांव ही रहें ।

मुक्तिबोध भीतर से उद्वेलित थे । उनकी खोज उन्हें एक जगह नहीं रुकने देती थी । वह शहर शहर घूमते रहे । हर शहर में कुछ दिन ठहरते , वहां से अनुभव की गठरियां समेट फिर किसी तलाश में वे भटकते रहे । इसी कारण वे व्यवस्थित नहीं रह पाये । एक शहर से दूसरे शहर की इस यात्रा में अव्यवस्थित न हो पाना उनकी मजबूरी नहीं थी । स्वेच्छा से यायावर मुक्तिबोध अ अन्त तक तलाशते रहे अपने मूल्यों के अनुरूप दुनिया ।

<u>व्यक्तित्व :</u> मुक्तिबोध अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के सरल उदार और भावुक व्यक्ति थे । आत्म केन्द्रिता और जिद्दीपन इनकी विशेषताएं थीं । उनका स्वभाव नेमी चन्द्र जैन को लिखे गये उनके पत्रों में आत्मस्वीकृति के रूप में मिलता है । उन्होंने जीवन में जो भी कुछ ग्रहण किया समूचे व्यक्तित्व से ग्रहण किया । मानव जीवन की ओर करुण भाव से देखा जो उनका संस्कार कहा जा सकता है । इसके साथ उसे एक और नजरिये से देखा वह था आदर और उमंग से भरा नजरिया , छलकपट, दुहरापन, व्यवहारिक स्वार्थवृत्ति का उनके पास नितांत अभाव था । जीवन के प्रति प्रकट होने वाली उनकी प्रतिक्रियाएं बौद्धिक और तटस्थ नहीं थीं । तीव्र भावनात्मक थीं । ऐसी आत्मलीन प्रवृत्ति, मन की ऐसी उड़ान और निजी परिस्थितियों के संबंध में गहरा अज्ञान उन्हें शायद पिता से उत्तराधिकार में ही मिले थे । श्री शरच्चन्द्र मुक्तिबोध ने लिखा है कि 'पिता जी बड़े लोकप्रिय ईमानदार और जबर्दस्त पुलिस अफसर अवश्य थे किन्तु रिटायर होने के बाद की व्यवस्था

उन्होंने कुछ नहीं की थी । इस मामले में वे भाई-साहब पर निर्भर थे । पिताजी के रिटायर होते ही 'महलनुमा' क्वाटर को छोड़ हम किराये के छोटे मकान में आ गए । फर्नीचर आदि सब गायब हो गया । अर्दली वगैरह सब चले गए थे । हम बाकी के तीन भाई पढ़ रहे थे कि पढ़ाई छोड़ने का मौका आ गया । तन्ख्वाह बन्द हो गई । थोड़ी सी पेंशन थी जो मिलने के लिए काफी समय था पिताजी छोटी सी जागीर में नौकरी करने चले गये । हम सब लोग भाई-साहब की ओर देखने लगे । लेकिन उन्हें इस बात की बिल्कुल खबर नहीं थी । तब वे मास्टर थे और बचा-खुचा समय उनका बीतता था अपने राजकीय साहित्यिक कामों में । उन्हें सब तरह की सुविधाएं प्राप्त करते रहने की आदत थी । अब सुविधाएं नहीं मिलेंगी तो जैसे थे वैसे ही रहने लगे । उनका जीवन जैसा था वैसा ही चलता रहा । किन्तु उन्हें कुछ कहने की आवश्यकता उनके बाद में ही बड़ा होने से प्रतीत होने लगी । चूंकि उनकी निर्माण की हुई परिस्थिति में मैं फंस जाता था, मैंने बार-बार चेताने का प्रयत्न किया । यह बात सच्च है कि जताने पर भी वे जागरूक नहीं हो पाते थे फिर भी संपर्क तो परिस्थिति में ही था वह बढ़ता गया मेरे उनके संबंध दोहरे हो गये । एक ओर तो मैं उनकी कड़ी आलोचना करता और दूसरी ओर उनके सभी कार्यों के प्रति मेरी पूरी-पूरी सहानुभूति रहती थी । यही सिलसिला बिल्कुल आखिर तक बना रहा । अपनी परिस्थितियों के संबंध में उन्होंने कभी कोई निर्णय नहीं लिया । उज्जैन छोड़ने के बाद परिस्थितियां बिगड़ती ही गई । भाई साहब जहां बैठ जाते जहां जाना चाहते चले जाते । सिगरेट और चाय तो मूड के हर उतार चढ़ाव के साथ चाहते । लगातार चाय पीने की उन्हें आदत पड़ गई थी । यही क्रम जिन्दगी के आखिर तक चलता रहा । चाय सिगरेट के बल पर वे कठिन से कठिन बौद्धिक परिश्रम कर सकते थे ।[1] शरच्चन्द्र के इस कथन से यही अनुमान

---

1- राष्ट्रवाणी : फरवरी: 1965: मेरे बड़े भाई साहब, शरच्चन्द्र मुक्तिबोध ।

लगता है कि उनकी परिस्थितियां स्वयं उनके अपने स्वभाव के कारण भी निर्मित हो जाती थीं। अपनी जरा-जरा सी इच्छाओं की पूर्ति के लिए जिद ठान लेते थे। अपने मूड के शिकार रहते और उनकी इच्छाओं की पूर्ति के आड़े आने वाला व्यक्ति उन्हें अपना दुश्मन लगता था। नेमिचन्द्र जैन को पत्र में एक जगह वे अपनी खीझ उतारते हुए लिखते हैं "मैं बाहर, प्रतिदिन तीन कप चाय और बीड़ी पीता हूं, जो मेरे बस से बाहर की बात है... मुझे मानसिक शान्ति नहीं मैं लिख नहीं सकता, मैं कमा नहीं सकता, न ही मैं अपने भाई से मांग सकता हूं। यह मेरे लिये त्रासद समान है और बार-बार मेरी बीड़ी और चाय पर आक्षेप मुझे और भी कटु बना देता है।"[1]

स्वभावत: विद्रोही मुक्तिबोध किसी चीज से भी समझौता नहीं कर पाते थे। श्री शरच्चन्द्र लिखते हैं " उन्हीं दिनों की बात है कि वे अपने नये शुक्रवारी के घर में टायफाइड से बिमार पड़ गये। तेरह - चौदह दिन की बीमारी थी, उन्हें हाइ टेम्प्रेचर था फिर चौदहवें दिन शायद बुखार उतर गया। उन दिनों शाम को मैं उनके घर पहुंच जाता था और उन्हीं के घर सोया करता था। उन पर कड़ी नजर रखना आवश्यक था। डाक्टर ने बताया था कि उन्हें "रिलेप्स" से बचाना चाहिए। उठने बैठने और घूमने की मनाही थी। बुखार उतरने के दूसरे या तीसरे ही दिन वे कमरा छोड़कर हवा खाने के लिए दरवाजे पर आकर खड़े हो गये। मुझे बहुत बुरा लगा। उस घटना के कई दिन बाद उन्होंने मुझे बताया कि मेरा तिरस्कार उन्होंने जितना उन दिनों किया था उतना कभी नहीं किया।"[2]

---

"If I smoke bidies and take three cup of tea daily outside, I can't help ... I have no peace of mind. I can't write, I can't earn. I can't beg from my brother. That would be greatest punishment to me and this repeated reference to my tea and bidies indulgence. Make me awfully brutal, And I get horrified at my roused passions."

1- मुक्तिबोध रचनावली भाग छ: पृष्ठ-285

'मुक्तिबोध एक संस्मरण' में हरिशंकर परसाई लिखते हैं 'मुक्तिबोध विचारों से आधुनिक वैज्ञानिक लेकिन इसके साथ ही व्यवहार में एकदम सामंती। किसी को अपने घर साग्रह खाना खिलाना, अपनी हैसियत से बाहर खातिर करना उनकी खास प्रकृति थी। लगता था कोई पुराने ठाकुर साहब हैं जिन्हें मूछ मुंडाना पड़ेगा। अगर महमाननवाजी में कभी आई। एक बार नागपुर में जब वे तीव्र ज्वर में 'नया खून' के टीन के नीचे काम कर रहे थे, मैं पहुंच गया। भरी दुपहरी में मुझे मिठाई खिला लाए तब चैन पड़ी। मैंने बहुत मना किया पर वे कहते -- नहीं साहब आप आए हैं तो कुछ खाना तो पड़ेगा।'[1]

इसमें बनावट नहीं थी सच्ची ममता थी। उनके आंतरिक संस्कार थे। वे नयी से नयी वैज्ञानिक उपलब्धि से मुग्ध होते थे। परिवार नियोजन के खिलाफ थे। परिवार नियोजन को वे पूंजीवादी सभ्यता की प्रवृत्ति मानते थे। विचारों के मामले में जितने सधे हुए, जिन्दगी की व्यवस्था में उतने ही लापरवाह। स्वस्थ के प्रति अत्यन्त असावधान, सम्बन्धों में लचीले पर विचारों में इस्पात की तरह कहीं कोई समझौता नहीं, पैसे पैसे को तंग रहते, मगर पैसे को लात भी मारते थे। कभी कभी बिल्कुल निर्भय हो जाते। कभी भोहग्रस्त। उनके स्वभाव में कुछ विचित्र विरोधाभास थे कि पैसा देने वाली पत्रिकाओं में लिखकर आमदनी बढ़ा सकते थे पर लिखते नहीं थे। कहते 'अपनी पत्रिका में लिखेंगे मुझे तो बस कागज आप दे दीजिए।'[2] मधुर स्वभाव होने पर भी वे चालबाजियों को बर्दाश्त नहीं कर पाते थे। खूब मजे से आत्मीयता से बातचीत करते थे, मगर कोई वैचारिक चालबाजी करें या ढोंग करें, तो

---

2- राष्ट्रवाणी: फरवरी 1965: मेरे बड़े भाई साहब शरच्चन्द्र मुक्तिबोध

1- आलोचना : जुलाई-सितम्बर 1964, मुक्तिबोध एक संस्मरण' हरिशंकर परसाई।

2- -- वही -- ,, ,, ।

मुक्तिबोध चुप बैठे तेज नज़र से उसे घीरते रहते ।"[1]

सहज ही विश्वास कर लेना मुक्तिबोध ने कभी सीखा ही नहीं था । स्वयं पर भी वे जल्दी विश्वास नहीं कर पाते थे । उनके अन्तर्मन से उनका वार्तालाप चलता था ।"[2] "यह सिर्फ एक प्रकार का आत्मालाप था । मैं स्वत: से बात करते हुए वास्तविकता और छाया से संघर्षरत था ।"[2]

वे सामान्य व्यक्ति का भरोसा कर सकते थे । राजनीतिज्ञ और साहित्यिकों के प्रति वे सदैव शंकालु बने रहे । उनके कटु अनुभव और अकेलेपन ने उन्हें अत्याधिक सजग बना दिया था । उन्हें अपने चारों ओर षड्यंत्र नज़र आता था । उनकी पुस्तक 'भारत इतिहास और संस्कृति' पर भारत → सरकार ने प्रतिबन्ध लगा दिया तब वे और भी शंकालु हो उठे इसके पीछे राजनीतिक सन्दर्भ था वे लिखते हैं," यह नंगा फासिज्म है लेखक को लोग मेरे शारीरिक क्षति की धमकी दे । इधर सरकार सुनने तक को तैयार नहीं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता जा रही है । गला दबाकर आवाज़ घोंटी → जा रही है ।[3]

मुक्तिबोध की सबसे बड़ी खूबी यह थी कि वह आत्मालोचन कर अपनी

---

1- आलोचना : जुलाई-सितम्बर 1968 'मुक्तिबोध एक संस्मरण' हरिशंकर परसाई ।

2- "Just it was a sort of monologue. I was talking to myself fighting with a shadow and a reality "

मुक्तिबोध रचनावली क: पृष्ठ- 228

3- आलोचना :जुलाई-सितम्बर 1968 'मुक्तिबोध एक संस्मरण'-हरिशंकर परसाई ।

कमजोरियों को मित्रों के सामने स्वीकार करते थे --"तुम तो जानते ही हो कि मैं एक मूर्ख और निकृष्ट अभागा व्यक्ति हूं। यहां मैं अपनी तुलना गोल्डस्मित से करता हूं। परिवार निःसन्देह रूप से मेरे लिये अभिशाप रहा है कारण मुझमें परिवार के प्रति अपने दायित्व को निबाहने की क्षमता नहीं है। अपनी इस कमजोरी को आत्मसात करना मुझे और भी निराशावादी और दुःखी बना देता है। मुझे हमेशा यह महसूस होता है कि मैं एक नट की भूमिका निबाह रहा हूं। मैं स्वयम् को बार-बार सन्तुष्ट करने का प्रयास करता हूं किन्तु मैं एक हठी (बल्कि निपुण) विद्रोहवादी (विप्लवकारी) हूं।

मेरी काल कोठरी की जिन्दगी ने लोगों की आशा से भी अधिक मुझे और भी दुःखी और उज्जड़ बनादिया है और मानवद्वेषवाद (नकचढ़ापन) भावुकता से ज्यादा बुरा आचरण है जिसे आप भी स्वीकार करेंगे। मानवमूल्यों की अवमानना (हीनता) के बावजूद मैं अपनी समझ के अनुसार उन्हें समझने लगा हूं। बचपन से ही अत्यन्त आत्माभियोगी विकार युक्त प्रवृत्ति के कारण एक अलग प्रकार के प्रभाव के तहत जीता हूं।[1]

---

1- You know I am an old fool and some time a wretched fellow. Here I compair myself with Goldsmith. Family that has been my course Yes positively because I have no capacity to manage a house hold. Self absorption on this weakness of mine makes me all the more passemistic and tragic . I alway feel, I am playing a roke dances role of course. I am playing a roke dancer role. Of course I correct myself again and again but I I am an inveterate (rather veteran) anarchist.

I know that my low cellar life has made me darker gloomier and more cynical them perhaps people imagine me to be. And cynicism is more wicked then sentimentalism Which I hope you know. But inspite of the debasement of the sense of human values. I have began to understand than inspite of what I thing of myself to be. I exercise a different kind

अपनी परेशानियों से वह स्वयं मुक्त होने का प्रयत्न करते थे और इसके लिए काम का सहारा लिया करते थे । " हर चीज़ के बावजूद यह अधिक सही है कि व्यक्ति काम में खोया रहे । यह समाज त्रासद है अति त्रासद । क्यों नहीं हमारा कर्म-क्षेत्र हमारा ही लक्ष्य हो जिसके चलते सारी परेशानियां और सारी अमहत्वपूर्ण निस्सहायक स्थितियां अस्तित्वहीन हो उठेंगी ।"[1]

उनका आत्मस्वाभिमान कभी अहंकार रूप में अभिव्यक्त नहीं हुआ । शरच्चन्द्र मुक्तिबोध के शब्दों में "वह एक गहरे अर्थों में थे ।"[2]

मुक्तिबोध मार्क्सवादी दृष्टि रखते थे । जीवन की जटिलताओं को समझते थे । उनका निष्ठा मानवीय दुर्बलताओं से था । मानवता के वे कट्टर पक्षपाती थे ।

डा० भटनागर के शब्दों में "उनकी व्यक्तिगत कृतियों द्वारा भावनाओं और विचारों द्वारा जीवन के हर अपूर्ण पहलू के प्रति एक जोरदार

---

of influence which I very rarely not due to the extreme self accusing morkid tendency kept on working since child hood. 1

मुक्तिबोध ग्रन्थावली : खं: (6) पृष्ठ-241

1- Any way It is good thing to be lost in one's own work. The world is bad too bad. let our work be the chief interest. Every thing will fade. into irsignificance all those trouble and helpless situation.
मुक्तिबोध ग्रन्थावली खं: (6) पृष्ठ-6

निर्णय प्रकट हुआ । यह निर्णय उनके व्यक्तित्व के किसी एक अंश का जीवन के किसी एक क्षेत्र के प्रति निर्णय नहीं था । उनका पूरा व्यक्तित्व अपने सम्पूर्ण चैतन्य के साथ भावनात्मक प्रतिक्रिया द्वारा उसका मूल्यांकन कर देता था । यह व्यक्तित्व किसी प्रकार का अन्याय या शोषण नहीं सह सकता था । वह स्वयं एक ऐसा नैतिक मूल्य था जिसके सम्पर्क में आकर जीवन की वास्तविकता अपने असली रूप में प्रकट हो जाती थी । अपनी अक्षमताओं के संबंध में जागरूक होने से वह विद्रोही व्यक्तित्व मानवीय जीवन की अक्षमताओं की और दुर्बलताओं की ओर क्षमाशील दृष्टि से ही देखता था ।[1]

वे रिबेल थे इसलिए निष्कासित भी थे । इसी कारण एकांकी भी । परिवार के प्रतिनिष्ठा बद्ध थे । माता-पिता भाई-बहन के प्रति अगाध स्नेह किन्तु अत्यांतिक आत्मनिष्ठ प्रवृत्ति और जीवन से विरोधाभास उन्हें जीवन से दूर धकेलते थे । शरच्चन्द्र मुक्तिबोध के अनुसार "वे नौकरी करते थे, मित्रों में रहते थे लेकिन अपनी जीवन पद्धति के कारण शायद उनसे पूरी तरह आंतरिक तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाते थे । और राजकीय क्षेत्र में भी कलाकार सहज भावनात्मक रेप्रोच के कारण वे अपने को पूरी तरह रूट होम नहीं कर पाते थे ।[2]

जीवन के प्रति परिवर्तन की आस्था से ओत-प्रोत थे । भविष्य के प्रति निष्ठा और उपेक्षितों के प्रति गहरी सम्वेदना और कटु परिस्थिति से उत्पन्न भयानक विसंगति के मध्य उभरता अकेलापन उनके व्यक्तित्व की विशेषताएं थीं ।

---

2- राष्ट्रवाणी: फरवरी: 1965: मेरे बड़े भाई साहब - श्री शरच्चन्द्र मुक्तिबोध ।

1- गजानन माधव मुक्तिबोध : जीवन और काव्य: डा०महेश पटनागर पृष्ठ- 21 ।

2- -- वही -- ,, ,, ,, ।

वे जीवन की सबसे नीची सतह को देखने के आकांक्षी थे । जिसके लिए अकेले ही वे अंधेरी गुफाओं, जंगलों, पेचीदा चक्करदार, सीलन भरे तेखानों में पैठना चाहते थे । अत्याधिक गम्भीर स्वभाव के मुक्तिबोध कहीं निष्कपट बालक हो उठते थे । संसार की व्यवहारिकता उनके बस का रोग नहीं था । अपने कर्तव्यों को वह निबाहना चाहते थे और इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए । उन-सा समर्पित व्यक्तित्व कम ही देखने को मिलता है । बड़े परिवार की जिम्मेदारियों का बोझ उठाए, पिता और पुत्र के कर्तव्यों का पालन करते मुक्तिबोध निरन्तर बीमार जिन्दगियों के मध्य स्वस्थ विचारों को पालते रहे । लगातार चौबीसों घण्टे महीनों और वर्षों जिसे समस्याओं का सामना करना पड़ा । वह जब भी मिलते, व्यक्तिगत कष्टों की बात नहीं करते थे । चिट्ठी-पत्री में एकाध-वाक्य व्यक्तिगत समस्याओं का होता बाकी साहित्यिक और सामाजिक ।[1] अत्यन्त संपर्कों में भी अड़िग रहकर वह अपने से लड़ते रहे । उनका क्षीणकाय शरीर देखकर किसी के लिए सहसा उनके मन में मनु के पुत्र के प्रति छिपी गहरी आस्था अदम्य विश्वास की थाह और मुख पर झलकने वाली स्वाभाविक हास्य में निराशा के कठिनतम क्षणों में भी कंधे से कंधा भिड़ाकर साथ चलने वाली शक्ति का पहचान पाना दुष्कर था ।[2]

मुक्तिबोध में कोरी भावुकता कभी नहीं थी । उनका व्यक्तित्व उनकी सम्वेदनशीलता बौद्धिकता साहित्यकार की आस्था , उनकी एक साहित्यिक की डायरी में देखी जा सकती है ।

---

1- राष्ट्रवाणी : फरवरी: 1965, वह तेजस्वी पीढ़ा-श्री हरिशंकर परसाई ।

2- चांद का मुंह टेढ़ा है : कवि परिचय : शमशेर बहादुर सिंह ।

जीवन के अंतिम दिनों में मुक्तिबोध को लगभग 7 फरवरी 1964 को शरीर के बायें हिस्से में पक्षाघात हो गया। राजनंद गांव के 'क्रिश्चियन फेलोशिप हास्पिटल' में उनकी चिकित्सा हुई किन्तु तनिक भी सुधार नहीं हुआ। 1964 में उन्हें गर्दनतोड़ 'मैनिजाईटिस' की बिमारी फैली पड़ी उनकी निराशा बढ़ती गई लम्बी बीमारी उन्हें तोड़कर रख दिया। उस समय के वरिष्ठ साहित्यकारों, मैथिलीशरण गुप्त, काका कालेलकर, माखनलाल चतुर्वेदी, जैनेन्द्र कुमार, बच्चन, प्रभाकर माचवे, भारतभूषण अग्रवाल, नेमिचन्द्र जैन आदि ने दिल्ली से मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री मिश्रा जी को तार दिया कि मुक्तिबोध की चिकित्सा राजकीय स्तर पर हो। परिणाम स्वरूप उन्हें भोपाल के हमीदिया अस्पताल में भर्ती कराया गया। मध्यप्रदेश के सर्वश्रेष्ठ चिकित्सकों के द्वारा 'सेरिब्रलथ्राम्बासिस' बीमारी की चिकित्सा की गई परन्तु लाभ न हुआ डा० ने 'ट्यूबकुलर मैनिजाइटिस' बताया। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री से मिलकर बच्चन, माचवे, अजायकुमार जैन ने मुक्तिबोध के सरकारी खर्च पर मेडिकल में उनका इलाज करवाया।

मुक्तिबोध जिन्दगी भर संघर्ष करते रहे, खुद से परिस्थितियों से, बीमारियों और अन्त में मृत्यु से भी वे संघर्ष करते रहे। डा० उदयभानु के शब्दों में 'मुक्तिबोध और मृत्यु में भीषण द्वन्द्व हो रहा है।'[1] विलियम फाकनर ने लिखा है ' मैं मानव के अन्त को स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं और लाता है, मुक्तिबोध की मृत्यु को पराजित करके युद्ध में रत 'अभी न होगा मेरा अंत- अभी न होगा मेरा अन्त ' निराला का यह स्वर मुक्तिबोध की आत्मा में निर्झरित हो रहा है।'[2] लम्बे संघर्ष के बाद 12 सितम्बर

---

1- राष्ट्रवाणी: फरवरी 1965 : अर्थ की वेदना घिरती है मन में - उदयभानु मिश्र।

2- -- वही -- ,, ,, ,,

1964 को प्रात: 9 बजकर पांच मिनट पर मुक्तिबोध की संघर्षमयी जिन्दगी का अन्त हो गया ।

## युगीन परिस्थितियां और मुक्तिबोध

मुक्तिबोध की कहानियों के वस्तु को समझने उन्हें समकालिक लेखकों से इतर मूल्यांकन करने की प्रक्रिया में उनके युग की परिस्थितियों का आकलन अत्यावश्यक है । किसी भी लेखक का अनुभूति क्षेत्र उसके युगीन → सन्दर्भों से भी प्रभावित रहता है स्वयं मुक्तिबोध इसका समर्थन करते हैं । →

"जनता की राजनीति और जनोन्मुख साहित्य का स्त्रोत एक ही → है और वह है आज का यथार्थ,आज का यथार्थ कोई रहस्यवादी धारणा नहीं है जिसको समझने के लिए इड़ा, पिंगला, सुषम्ना नाड़ियों को तीव्र करना जरूरी हो । यदि हमारी काव्य प्रेरणा वस्तुत: जन जीवन से उद्भूत हुई हो तो जन जीवन की वर्तमान परिस्थितियों और कष्टों का कारण भी हमारी अनुभूति क्षेत्र का अंग होगा अर्थात् इन्सानियत को तबाह करने वाले रावणों, उनके सिपाह-सलारों और दासों के जन-विरोधी षड्यंत्र भी हमारी अनुभूति का अंग होते हैं.... राजनीति और साहित्य मात्र अभिव्यक्ति में भिन्न है । उनका मूल है आज का यथार्थ यानी जन जीवन का → यथार्थ, उसके लक्ष्य, उसके अभिप्रेत , उसके संघर्ष ।"[1] स्वतंत्रता से पूर्व-प्रथम महायुद्ध की सरगर्मी और चुसता हुआ भारत और गरीबी और भुखमरी का शिकार । मजदूर श्रम शक्ति को कौड़ियों के मोल बेच रहे थे । पूंजीपति विदेशी सामान से होड़ नहीं ले पा रहा था । विदेशी माल का बहिष्कार हो यह नारा बुलन्द था किन्तु इसके पीछे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का सहयोग पूंजीपतियों को ही था उसके इतर इसका कोई उपयोग नहीं था । प्रत्यक्ष में जो भी था

---

1- नया खून : मुक्तिबोध : 26 जनवरी 1951 : पृष्ठ- 22

दिखावा मात्र ही था। रजनी पामदत्त- इण्डिया टुडे में लिखते हैं "हम यही कहना चाहते हैं कि प्रथम महायुद्ध काल में जब शोषण उत्पीड़न का चक्का बेहद तेज़ गति पकड़े हुए था, देश की सबसे बड़ी राजनीति पार्टी कांग्रेस ब्रिटिश शासकों के सुर में सुर मिला रही थी। मांटेग्यू व जेम्सफोर्ड जैसे सुधारों का उद्देश्य किसी भी प्रकार भारत को स्वतंत्रता की ओर ले जाना नहीं था। बल्कि नयी परिस्थितियों में उसे ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बनाए रखना ही था। गांधी जी को इन सुधारों में साम्राज्यवाद की बू भी न मालूम पड़ती थी। उनकी दृष्टि में वे ब्रिटिश शासकों द्वारा लादे गए सुधार न थे बल्कि ब्रिटिश जनता द्वारा भारत के साथ न्याय थे।[1]

जनता ने इस छल को समझा और बावजूद 'बूर्जुआ' नेताओं द्वारा सुधारों की वकालत के ब्रिटिश साम्राज्यवाद और पूंजीवादी शोषण के खिलाफ संघर्ष छेड़ दिये।[2]

रूस की 1917 की क्रान्ति का प्रभाव सारे विश्व पर पड़ा अतः भारतीय जागरूक जनता ने एक बारगी इसे उत्साह से देखा। अपने ढंग की अनूठी और आश्चर्य जनक घटना को पूंजीपतियों और साम्राज्यवादियों ने भय और आशंका से देखा। भारतीय मज़दूर वर्ग सचेत हो फुंफकार उठा, उसे रास्ता सुझाई पड़ा और उसी को अपनाकर आन्दोलन उनका धर्म बन गया। सन् 1918 में बम्बई की सूती मिलों में पहली बार बड़ी हड़ताल हुई फिर यह क्रम चलता रहा। इसी जन संघर्ष के दौरान - 1919 में 18 मार्च को रौलेट एक्ट पास किया। 13 अप्रैल 1919 को जालियांवाला बाग में जनरल डायर के संकेत पर हजारों भारतीयों को भून डाला गया। विद्रोह और दमन की भयंकर आंख मिचौली प्रारंभ हो गई।

---

1- रजनी पामदत्त इंडिया टुडे (अंग्रेजी) पृष्ठ- 133।

2- अयोध्यासिंह : साम्राज्यवाद का उदय और अस्त : पृष्ठ- 85।

इसी पृष्ठभूमि में सन् 1920 में बम्बई में लाला लाजपतराय की अध्यक्षता में अखिल भारतीय मजदूर वर्ग की चेतना को उत्तेजित करके थोड़े ही दिनों में मार्क्सवादी विचारधारा के प्रवेश और प्रसार के लिए एक उपयुक्त भूमिका का निर्माण कर दिया।[1]

आन्दोलन की नई शक्ति ने प्रवेश किया, देशवासियों का ध्यान कम्युनिस्ट पार्टी की ओर आकर्षित हुआ। लोग मार्क्सवादी साहित्य खोज खोज कर पढ़ने लगे। कहीं कहीं अभियुक्तों ने भी अदालत को ही अपने कम्युनिस्ट सिद्धान्तों के प्रचार का मंच बड़ी सफलता से बनाया।[2]

श्रमिकवर्ग ही नहीं किसान भी जमींदारों और अंग्रेजों के खिलाफ उठ खड़ा हुआ।

DISS
O,152,3,N174:4
152M3;1

अभी महायुद्ध की हलचल खत्म नहीं हुई थी कि द्वितीय महायुद्ध की तोपें आग उगलने लगीं। फासिज्म का अन्तर्राष्ट्रीय प्रसार हो रहा था। मजदूर आन्दोलन और फासिज्म का मेल बाला था। 1933 से लेकर 1939 के बीच दुनिया के मजदूर आन्दोलन के सामने जनतंत्र और समाजवाद की शक्तियों के सामने, फासिज्म और युद्ध के खिलाफ संयुक्त मोर्चे का सवाल प्रमुख हो उठा

इस खतरे से जूझने का कार्यक्रम अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मोर्चा गठित हुआ। ब्रिटेन और अमरीकी जनता कम्युनिस्ट नेतृत्व के मोर्चा में शामिल हुई।

भारत में कांग्रेस के अन्दर बाहर वाम पंथियों और समाजवादी विचारों की वृद्धि हुई थी। कांग्रेस के अन्दर दक्षिण पंथ और वामपंथ

---

1- ए० एस० माथुर : ट्रेड यूनियन मूवमेंट इन इंडिया (अंग्रेजी) पृष्ठ-3

2- मुजफ्फर अहमद : समकालेर कथा (बंगला) पृष्ठ-60-61।

TH-5348

पैदा हो गया था । 1936 के फैजपुर में हुए कांग्रेस अधिवेश में समाजवादी विचारों का और भी जोर देखा गया । पट्टाभिसीतारमैया ने इस अधिवेशन में समाजवादी विचारों का और भी जोर देखा गया । डा० पट्टाभिसीतारमैया ने इस अधिवेशन के विषय में लिखा- "पूरा वायुमण्डल समाजवादी नारों से गूंज रहा था और दूसरी तरफ साम्राज्यवाद और फासिज्म की शक्तियों की निंदा की जा रही थी । वामपंथियों के सुझाव पर कांग्रेस के एक प्रस्ताव में दुनिया के गुलाम लोगों के साथ-साथ तथा सोवियत संघ की जनता के साथ हिन्दुस्तान की दोस्ती का इजहार किया गया ।[1]

द्वितीय महायुद्ध की हलचल । 1941 में जर्मनी ने रूस पर आक्रमण कर दिया, जिससे एक नई अंतर्राष्ट्रीय स्थिति पैदा हो गई । फासिज्म के खिलाफ युद्ध जनता का युद्ध बन गया । और उसकी विजय को विश्व जनता की विजय माना गया ।

युद्ध के इस स्वरूप को कांग्रेसियों ने भी महसूस किया कि युद्ध अब सिर्फ साम्राज्यवादियों के बीच का नहीं है बल्कि वह अब दुनिया की प्रगतिशील ताकतों और घोर प्रतिक्रियावादी फासिस्टों के बीच का युद्ध है । युद्ध के प्रति बदले इस रुख का परिणाम हुआ कि कांग्रेसी और कम्युनिस्ट नेता रिहा कर दिये गये और 1942 की गर्मियों में भारत की कम्युनिस्ट पार्टी कानूनी घोषित कर दी गई ।[2]

ब्रिटेन के साम्राज्यवाद का सूर्यास्त हो गया और उसका स्थान लिया अमरीकी साम्राज्यवाद ने इसका कारण अमेरिकी युद्ध नीति थी जिसने युद्ध

---

1- डा० पट्टाभिसीतारमैया भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का इतिहास: पृ०-30

2- मुक्तिबोध की काव्य प्रक्रिया : अशोक चक्रधर : पृष्ठ-7 ।

में खुल कर भाग नहीं लिया और परिणामत: इसके समस्त कारखाने पूर्णत: सुरक्षित रहे । किन्तु इसके तत्काल बाद समाजवादी व्यवस्था का विकास और औपनिवेशिक व्यवस्था का ध्वंस होना प्रारंभ हुआ, ब्रिटेन अमरिकी साम्राज्यवादियों ने कुचक्र रचना शुरू किया और शीतयुद्ध को जन्म दिया ।

इसकी खुली घोषणा " 5 मार्च 1946 के भाषण में अमरीका के फल्टन शहर में ब्रिटेन के प्रधानमंत्री चर्चिल ने अमरीका के उपराष्ट्रपति ट्रूमैन के साथ सलाह-मशविरा के बाद की । "इसका मुख्य उद्देश्य यूरोप के देशों को समाजवाद से रक्षा, यूरोप के पूंजीवादी देशों और उनके उपनिवेशों में अमरीकी साम्राज्यवादियों के अर्थनीतिक प्रवेश को आसान बनाना पूंजीवादी दुनिया पर अमरीकी प्रभुत्व कायम करना और अपने नेतृत्व में यूरोप के सब पूंजीवादी देशों को हथियार बंद करना और संगठित करना जिससे कि सोवियत संघ एवं यूरोप की नई जनवादी शक्तियों पर एक साथ हमला किया जा सके ।"[1]

मुक्तिबोध की महत्वपूर्ण रचनाओं का समय यही है । उपरोक्त राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय घटनाएं मुक्तिबोध को फकफोर रही थी । इसी के साथ समूचा साहित्यिक सांस्कृतिक परिवेश भी बदल रहा था । यही मुक्तिबोध की चेतना का निमित्त था अत: साहित्यिक सांस्कृतिक परिवेश की जांच आवश्यक है । साहित्यिक सांस्कृतिक परिवेश - 1918 की अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों और उथल-पुथल के व्यापक प्रभाव से साहित्य अछूता नहीं बचा था । द्विवेदी युगीन प्रवृत्तियों का बाहुल्य था छायावाद पनप चुका था । कविताओं में क्रान्ति, साम्यावाद, वर्ग संघर्ष जैसे विषय लिए जाने लगे थे । गया प्रसाद स्नेही, दुर्गादत्त त्रिपाठी-अवध बिहारी

---

1- मुक्तिबोध की काव्य प्रक्रिया - अशोक चक्रधर : पृष्ठ- 7

मालवीय 'अवधेश' आदि कवियों की कविताओं ने प्रगतिशील विचारधारा को जड़ जमाने और विकसित करने में अप्रत्यक्ष योगदान दिया। यथा :

'साम्यवाद का भारत में तू आज बजा दे विजयगीत'[1]
'रक्त सभी हो दृष्ट, विषमता दूर हो
साम्य समता असीम विषमता दूर हो।'[2]

साहित्यिक परिवेश एक बड़े आन्दोलन की पृष्ठभूमि का निर्माण कर रहा था। डा० राम विलास शर्मा के शब्दों में 'यह छायावाद के उतार का काल था। छायावादी कविता का अति की अवस्था तक पहुंचा हुआ माधुर्य और सौन्दर्य नए युग की भूमिका में लोगों को लुभा सकने में सर्वथा असमर्थ और अशक्त साबित हो गया।'[3] राम अवध द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य के विकास की रूप-रेखा में लिखा 'इसका जन्म हमारे साहित्य की विशेष सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में हुआ और फिर विशेष परिस्थितियां उत्पन्न हो जाने के कारण इसका पर्यवसान भी हो गया।'[4]

यह परिस्थितियां समाजवादी चेतना के प्रसार की भूमिका बन रही थीं। अनेकानेक पत्र-पत्रिकाएं समाजवादी विचारधारा को प्रचारित कर रही थी। जागरण, हंस आदि पत्रिकाओं के माध्यम से लोगों तक यह विचार पहुंच रहे थे। इसी ने प्रगतिवाद को जन्म दिया।

प्रेमचन्द भारत में लेखकों को संगठित करने और भारतीय भाषाओं की एकता और पारस्परिकता की दिशा में बढ़ने के प्रयत्न में लगे हुए थे।

---

1- दुर्गादत्त त्रिपाठी : विजयगीत शीर्षक कविता : मनोरमा अक्टूबर 1925, पृष्ठ-44
2- राम विलास शर्मा : रूप तरंग : पृष्ठ-46
3- नामवर सिंह : छायावाद : पृष्ठ- 148
4- राम अवध द्विवेदी : हिन्दी साहित्य के इतिहास की रूपरेखा।

उधर सोवियत संघ में मैक्सिम गोर्की के नेतृत्व में 1934 में सोवियत लेखक संघ का गठन हुआ। ऐसा ही एक व्यापक प्रयत्न जुलाई 1935 में हेनरी बारबूज के नेतृत्व में पेरिस में हुआ। 1935 में ही लंदन प्रवासी भारतीयों में से कुछ समाजवादी विचारधारा के बुद्धिजीवियों ने लंदन में एक चीनी रेस्त्रा के तेहखाने में अपनी बैठक की और भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना करने तथा उसे सांस्कृतिक रक्षा करने के लिए विश्व लेखक अधिवेशन से अंगीभूत करने का निश्चय किया। भारत में संगठन बनाने का प्रयत्न हो ही रहा रहा था जिसके सूत्रधार थे प्रेमचन्द। पेरिस, मास्को और लन्दन में जो कुछ भी सर गर्मियां और हलचलें थीं उनसे सज्जाद जहीर और मुल्कराज आनन्द सम्पृक्त थे।

1936 में नागपुर में भारतीय साहित्य परिषद का अधिवेशन हुआ जिसमें प्रेमचन्द, नरेन्द्रदेव, पौलवी, अब्दुलहक, पं० नेहरू और अख्तर हुसैन रायपुरी के हस्ताक्षरों से युक्त पर्चा बांटा गया जिसमें साहित्यिक गतिविधियों को प्रगतिशील दिशा की ओर मोड़ने की अपील की गई थी। इस आन्दोलन को लेकर विवाद उठ खड़ा हुआ। अज्ञेय ने विशाल भारत में इसकी रिपोर्टिंग की। इसके पश्चात भी उत्तर प्रत्युत्तर भी चलता रहा-राजनीति में भी कांग्रेसी समाजवादी पार्टी के अन्दर मार्क्सवादियों और गैर मार्क्सवादियों के बीच जबरदस्त रस्साकशी शुरू हुई।"[1]

1936 के अप्रैल महीने में कांग्रेस अधिवेशन लखनऊ में हुआ उसी के समानान्तर प्रगतिशील लेखक सम्मेलन आयोजित हुआ कांग्रेस अधिवेशन के सभापति पं० नेहरू बने तथा प्रगतिशील लेखक संघ का अध्यक्ष प्रेमचन्द को बनाया गया पट्टाभिसीतारमैया ने 1936 के राजनीतिक माहौल का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि "हर जगह नौजवानों में समाजवादी विचारधारा हावी हो रही

---

1- रजनी पामदत्त : भारत वर्तमान और भावी : प्रथम संस्करण: पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली-1956, पृ०-22

थी । छात्र फेडरेशन और युवक संघों की लहर जोर पकड़ रही थी ।[1] रेखा अवस्थी ने इसका कारण दिया 'भगत सिंह को फांसी दे दी गई जन आन्दोलनों का दमन, नमक आन्दोलन और सविनय अवज्ञा आन्दोलनों की असफलताओं के कारण ब्रिटिश साम्राज्यवाद का क्रूर दमनकारी हिंसक चरित्र सामने आ गया था और अहिंसा पर से लोगों का विश्वास उठता जा रहा था ।[2] एक और तो प्रगतिशील आन्दोलन का जोर था और दूसरी ओर उसी के समानान्तर उसपर आरोप लगाया जा रहा था कि वह विदेश से लाकर थोपा गया है डा० रांगेय राघव का विचार है 'हिन्दी में इस भावना का विकास विलायत से लौटे हुए उन मध्यवर्गीय या उच्च मध्यवर्गीय युवकों ने किया जो मार्क्सवाद से प्रभावित थे किन्तु जिनका ज्ञान भारत के विषय में नहीं के बराबर था । ये लोग भारत के इतिहास और संस्कृति को कुछ अंग्रेजी अनुवादों के माध्यम से ही पढ़ सके थे । हम उनके सद्प्रयत्नों को कम करके दिखाने की चेष्टा नहीं कर रहे, वरन यह बताने का यत्न कर रहे हैं कि प्रारंभ से ही जो नींव पड़ी उसकी ईंट टेढ़ी गिरी और दुर्भाग्य से उसके ऊपर की इमारत भी ज़रा तिरछी हो उठी ।[3]

धर्मवीर भारती ने भी खुलकर विरोध प्रकट किया ।'यहां प्रगतिवाद का प्रवेश तब हुआ जब विदेशों में उसका दिवाला पिट चुका था । विदेशों की इस उतारन को हमने बड़े चाव से दौड़कर पहना जबकि हमारे अपने साहित्य में किसी भी प्रगतिवाद से चौगुना शक्तिशाली प्रवृत्तियां पनप रही थीं ।[4]

---

1- दि हिस्ट्री आफ दी इंडियन नेशनल कांग्रेस : खण्ड-2 (1935-47) प्रथम संस्करण : पदम प्रकाशन बम्बई (1947)

2- रेखा अवस्थी प्रगतिवाद और समानान्तर साहित्य : पृष्ठ-15

3- रांगेय राघव : प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड: सरस्वती पुस्तक सदन : आगरा प्रथम संस्करण 1954, पृष्ठ-7

4- धर्मवीर भारती : प्रगतिवाद : एक समीक्षा ।

इन आरोपों प्रत्यारोपों से उस समय की साहित्यिक गतिविधियों का अनुमान लगाया जा सकता है। रेखा अवस्थी के शब्दों में प्रगतिशील की भावना का उद्भव हिन्दुस्तान की अपनी परिस्थितियों, जन आन्दोलनों, विदेशी हुकूमत के दमन चक्र, समाजवादी विचारधारा के तेजी से पसार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के हनन की प्रतिक्रिया आदि कारणों से हुआ। 1929 के बाद हिन्दुस्तान की परिस्थितियों में और जनता की आत्मगत चेतना में क्रान्तिकारी परिवर्तन होने लो थे। भारतेन्दु कालीन यथार्थवादी रुझान के विकास तथा देश की परिस्थितियों के प्रति सम्वेदनशील रचनाओं की ईमानदार प्रतिक्रियाओं से जो यथार्थवादी साहित्य जन्म ले रहा था प्रगतिवाद उसी का सुसंगत ऐतिहासिक विकास था।"[1]

1938 में कलकत्ता अधिवेशन हुआ। साम्राज्यवाद विरोधी, फासिस्ट विरोधी और सामन्तवाद विरोधी संघर्ष के इस दौर में लेखकों ने व्यापक मोर्चा बनाने के उद्देश्य से रवीन्द्रनाथ ठाकुर को भी शामिल कर लिया गया। केवल हिन्दी ही नहीं अन्य भाषाओं के साहित्य में भी परिवर्तन का दौर आया था। ई० एम० एस० नम्बूदरीपाद ने मलयालम साहित्य के प्रसंग में लिखा। "केरल में प्रगतिशील साहित्य का आविर्भाव पार्टीजन साहित्य के रूप में हुआ।"[2]

इसका प्रेरणा स्त्रोत लखनऊ में हुई प्रगतिशील लेखकों की अखिल भारतीय कांग्रेस द्वारा किये गये आह्वान को माना गया। उसी के परिणाम स्वरूप। जीवन साहित्य संघ नामक भूतपूर्व संगठन पुनः अस्तित्व

---

1- रेखा अवस्थी : प्रगतिवाद और समानान्तर साहित्य : पृष्ठ-19

2- प्रथम अंक -2 जुलाई 1972 प्रगतिशील और साम्यवादी साहित्य ई० एम० एस० नम्बूदिरीपाद।

में आ गया । 1936 में श्रीपत राय के संपादकत्व में 'हंस' अन्तर-प्रान्तीय साहित्य प्रगति का अग्रदूत बनाया गया और उसके सम्पादन मण्डल में उर्दू से मौलाना अबुदुल हक, उड़िया से कालिन्दीचरण पाणिग्राही बंगला से नन्दगोपाल सेन गुप्ता, मराठी से विस० खांडेकर , कन्नड़ सेवी अश्वस्त नारायण राव आदि को रखा गया । जो प्रगतिशील साहित्य के व्यापक प्रसार को सिद्ध करता है ।

1936-1946 तक का दौर अनेक प्रकार की जटिल राजनीतिक और सामाजिक प्रयत्नों का दौर बन गया । देश के कुछ भाग अकाल और महामारी की विभिषिकाओं से तड़प रहे थे । बंगाल में अकाल पड़ा मुक्तिबोध असमय हंस के सम्पादन विभाग में थे ।

'हंस' का बंगला अकाल अंक उसी समय निकला था जिसमें अकाल के लोमहर्षक हृदयविदारक घटनाओं पर आधारित साहित्य था । दूसरी ओर फासिज्म का विरोध हो रहा था । राहुलसांकृत्यायन ने फासिस्ट विरोधी लेखक कांफ्रेंस के आयोजन की अध्यक्षता भाषण में कहा ' हमें अफसोस है कि हमारे कितने ही साहित्यकार अभी इसे नहीं समझते हैं कि फासिस्टवाद दुनिया की हरएक जाति की संस्कृति और नवनिर्माण का कितना महान शत्रु है ।'[1]

अत: संक्षेप में कहा जा सकता है कि वह अकाल दमन फासीवाद स्वाधीनता सामंतवाद साम्राज्यवाद, औपनिवेशिक शासन और राजनीतिक विषयों का साहित्य में अभिव्यक्ति का काल था । प्रगतिशील लेखक संघ के समानान्तर हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेश , कवि सम्मेलन होते रहते थे ।

---

1- राहुल सांकृत्यायन : हंस : जनवरी फरवरी 1944 ।

मुक्तिबोध इसी काल की देन है । 1936 के आस-पास का सारा वातावरण उनकी चेतना को मथ रहा था अत: युगीन चेतना से वह अलग नहीं थे वे भी इसी धारा के लेखक थे ।

स्वतंत्रता के बाद का (1948-1964) तक राजनीतिक सामाजिक परिवेश --सन् 1947 के बाद परिस्थितियों में परिवर्तन के परिणाम स्वरूप भारत के दो टुकड़े यानी पाकिस्तान विभाजित हो गया । संघर्ष बढ़ गया । राजनीति की बागडोर कांग्रेस के हाथों में आ गई । भारतीय क्रान्ति यानी वाम राष्ट्रीय संयुक्त मोर्चा की मंजिल जिसकी धारा मुख्यत: विदेशी साम्राज्यवादी शासन के विरुद्ध थी समाप्त हुई । किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शीत युद्ध जारी था । 1949 में नाटो की स्थापना हुई ।

जनता नये राष्ट्रीय राज्य से आशा लगाए थी । औपनिवेशिक अतीत के दुर्दिन समाप्त हुए । रचनात्मक कार्य के नए राष्ट्र का निर्माण होगा । एक नये औद्योगिक शक्ति संपन्न राष्ट्र की कल्पना और एक स्वर्ग की कल्पना पर जल्दी ही पानी फिर गया । बजाय इसके कि विदेशी पूंजी का वितरण रचनात्मक कार्यों में किया जाता, देश के दलित वर्ग को बढ़ावा मिलता परन्तु हुआ उल्टा विदेशी पूंजी सुविधाएं प्राप्त कर ली गई साम्राज्यवादी देशों की पूंजी भी विशेषत: अमेरिका की पूंजी भी देश में जड़ जमाने लगी 'दूसरी ओर विश्व समाजवादी सहायता का उपयोग किया, किन्तु उसका वास्तविक उपयोग साम्राज्यवादी, इजारेदारी के साथ सौदाबाजी करने में ही अधिक रहा है ।'[1]

मुक्तिबोध ने लिखा 'असल में भारत में इस्पात कारखाना सरकारी औद्योगिक क्षेत्र में खुल रहा है तो अमेरिकी सहायता से । टाटा

---

1- अशोक चक्रधर मुक्तिबोध की काव्य प्रक्रिया : पृष्ठ- 14 ।

अपने इस्पात कारखाने का बहुत बड़ा विस्तार कर रहा है और बिड़ला ब्रिटिश सहायता से नया इस्पाती कारखाना खोल रहा है -- हाल ही की खबर कि भारत सरकार ने अमेरिकी पूंजी की प्राइवेट ट्रीटमेंट गारंटी स्कीम मंजूर कर ली है यानी वह आगामी 25 वर्ष तक अमेरिकी पूंजी का राष्ट्रीयकरण न करने की गारन्टी लेगी । ये गारन्टी देने पर अरबों रुपये की अमेरिकी पूंजी निजी तौर पर भारत में लगेगी --- केन्द्रीय सरकार के सलाहकारों पर ब्रिटिश और अमेरिकी पूंजी का बड़ा प्रभाव है । अमेरिकी और ब्रिटिश पूंजी की बाढ़ देखकर लगता है कि भारत में आगामी पच्चीस तीस वर्षों के लिए समाजवादी ढंग टल गया है ।"[1]

मुक्तिबोध तथा उनकी विचारधारा के लेखक वर्गहीन समाज को उस युग की सबसे बड़ी आवश्यकता मान कर चलरहे थे । वर्गहीन समाज आज के युग की सबसे बड़ी पुकार है । इसलिए कांग्रेस भी अपना ध्येय वर्गहीन समाज बनाना चाहती है । पर प्रश्न उठता है कि क्या घोर पूंजीवादी व्यवस्था पर आधारित कांग्रेसी संगठन जनता को सिर्फ अपने ध्येय में परिवर्तन के आधार पर अपनी ओर आकर्षित कर सकता है ।[2]

तत्कालीन सरकार पूंजीवाद के रास्ते पर जा रही थी । समाजवाद के रास्ते पर नहीं । राष्ट्रीय आन्दोलन और राज्य सत्ता के चरित्र को लेकर आंतरिक मतभेद पैदा हो गया । एक वर्ग का मत था कि कांग्रेस सरकार देश का नव निर्माण करेगी और जनवादी क्रान्ति की दूसरी मंजिल को पूरा करेगी । दूसरा वर्ग कहता था कि नहीं -- इसका रास्ता अधकचरे पूंजीवाद का रास्ता है । इसका मूल उद्देश्य जनता का हितचिंतन नहीं है ।

---

1- मुक्तिबोध : नया खून : मासिक 23 दिसम्बर 1965: पृष्ठ-2

2- मुक्तिबोध : नया खून : 27 दिसम्बर 1953 : पृष्ठ-5

पूंजीपति भूस्वामी वर्ग का चिंतक है अत: इसके प्रकट नारों से भ्रमित नहीं होना चाहिए। 1949 में तेलंगाना के किसान आन्दोलन को जिस प्रकार अजनतांत्रिक ढंग से कुचला गया है --राज्य सत्ता के चरित्र को समझा जा सकता है।[1]

बेरोजगारी, धनी निर्धन वर्ग की खाई का गहरा होना, उस समय के परिदृश्य थे मुक्तिबोध तीव्र प्रतिक्रिया दृष्टव्य है। "जो समाज और राज्य नौजवानों को सतत उन्नतिशील पेशा नहीं दे सकता। इतिहास के विशाल हाथ उसकी कब्र खोदने के लिए भारी गड्ढा तैयार कर रहे हैं।[2]

"जी हां शायलाक ने बसानियों से सिर्फ एक पौंडभर-गरम जीवित देह का मांस मांगा था, लेकिन आज के हिन्दुस्तानी शायलाक तो पूरी की पूरी देह मांग रहे हैं।"[3]

संकट बढ़ते गये और मजदूर वर्ग किसान मध्यवर्ग और छोटे उद्योगपति और व्यापारी भी पिसने लगे। एक तीव्र आक्रोश जनता में फैल गया। यह असंतोष विभिन्न रूपों में प्रकट होने लगा। "हिन्दुस्तान की जनता अपने दु:ख दर्द की कराह केअलावा निर्णायक रूप से कुछ नहीं कर पा रही है।[4]

बुद्धिजीवी मांग करने लगा "यदि हमें भारत को स्वभाविक मानव जीवन का स्वर्ग बनाना है तो शोषण और अत्याचारों के पहाड़ों

---

1- अशोक चक्रधर : मुक्तिबोध की काव्य प्रक्रिया पृष्ठ-14

2- नया खून : नौजवान अंक : 1952 पृष्ठ-17: मुक्तिबोध

3- सारथी : 31 नवम्बर-1954 पृष्ठ-17-मुक्तिबोध

4- मुक्तिबोध : नया खून : दीपावली विशेषांक 1951: पृष्ठ-2

को चीर कर नीचे के रेगिस्तान की अपार शक्ति से नई प्राणधारा बहानी होगी । तभी हमारे जीवन में मानवोचित स्वभाविकता और........ आ सकती है ।"[1]

साहित्यिक परिदृश्य : कांग्रेस फार फ्रीडम का एक सम्मेलन 1950 में बर्लिन में हुआ । इसमें समाजवाद पूंजीवाद जैसे शब्दों को कृत्रिम लफ्फाजी कहा गया और यथा स्थिति को बरकरार रखने के लिए अमेरिकी बमों को शान्ति के रक्षक कहकर यह पुकार लगाई गई कि समाजवाद को विश्व से उखाड़ फेंके बिना शान्ति कायम नहीं हो सकती । बम्बई में अज्ञेय के नेतृत्व में जो कांग्रेस फार कल्चरल फ्रीडम हुई वह भी इसी अन्तर्राष्ट्रीय अभियान का अंग थी ।"[2]

"कहना न होगा कि शीतयुद्ध की राह चलने वाले स्वयं अपने ही देश के लेखकों ने मौके का लाभ उठाकर प्रगतिवाद पर धावा बोल दिया । नई कविता के बुर्ज से शीत युद्ध की गोलंदाजी की गई ।[3]

मुक्तिबोध के शब्दों में समग्र सांस्कृतिक क्षेत्र में ये शीत युद्धीय संस्कृति अनेकानेक नवीन रूपों में अभिव्यक्त हुए । कलाकार की स्वतंत्रता, कला की राजनीति से मुक्ति-वाक्य की विशेष पैटर्न, विशिष्ट सौन्दर्यानुभूति का सिद्धान्त , लघु मानववादी, क्षणवादी, अनुभूति की प्रमाणिकता भोगा हुआ यथार्थ जैसी शब्दावली एवं अवधारणाओं का प्रयोग प्रगतिवाद के मूलोच्छेद के लिये किया जाने लगा ।" यह साफ साफ दिखाई पड़ने लगा कि

---

1- मुक्तिबोध : नया खून : दीपावली विशेषांक 1951:पृष्ठ-2

2- डा0रामविलास शर्मा: स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य : पृष्ठ-41

3- मुक्तिबोध : नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र : पृष्ठ- 57

लेखकों के मस्तिष्क पर उनके मन प्राण पर अधिकार जमाने के लिए लड़ाई लड़ी जा रही है, अर्थात् भिन्न प्रकार की जीवन व्याख्या उनके हृदय में मूलबद्ध करने का प्रयत्न किया जा रहा है। प्रगतिवाद हृदय की ओर उन्मुख हो चला था।[1]

कारण मुक्तिबोध की दृष्टि में "प्रगतिवादियों ने भावों के कटघरे बना लिये थे, जिनसे वे पक्ष और विरोध का निर्माण करने लगे। उनका जीवन से सम्पर्क टूट गया और फलस्वरूप वे सिद्धान्त के बाहर टावर पर बैठकर आदेश देने लगे। उन्होंने नए कवियों से अवांछित शत्रुता का भाव रखा और इस प्रकार उन्हें विरोधी खेमें में डाल दिया।[2] मुक्तिबोध ने प्रगतिवादियों के खेमें में रहना स्वीकार किया। "प्रगतिवादियों के पास एक सांगोपांग और स्पष्ट विचारधारा थी। प्रगतिवादियों ने साहित्य की आध्यात्मिक व्याख्या का विरोध किया। बड़ा ही कठोर युद्ध रहा। उस काल के अनन्तर, अध्यात्मिक व्याख्या का प्रभाव दुर्बल होता गया। नि:सन्देह प्रगतिवाद के भारतीय व्याख्याता पर्याप्त अपरिपक्व थे। उनमें भेद भी खूब था। अन्तर्बाह्य कारणों से प्रगतिवाद का प्रभाव वैसे ही क्षीण हो रहा था। नई कविता के कुछ क्षेत्रों द्वारा किए गए हमलों के बाद, उसका प्रभाव अत्यन्त अल्प हो गया।[3] साहित्य में प्रयोगवाद के रूप में आधुनिक भावबोध के नाम पर लघुमानववाद, कुण्ठावाद, क्षणवाद, दु:खवाद, शक्ति स्वतंत्र्य आदि अनेक प्रवृत्तियां प्रचलित हो गईं। इस आधुनिक भावबोध को मुक्तिबोध ने नकारात्मक भाव बोध की संज्ञा दी जो हिन्दी साहित्य की हर विधा पर जिसे नई कहा गया में स्थापित हुआ और उसके स्थापकों द्वारा उसके कारणों भी गिनाए जाने लगे। अज्ञेय के नेतृत्व में मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी कलाकार

---

1- नयी कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबन्ध: मुक्तिबोध: पृ0-162

2- -- वही -- ,, ,, पृष्ठ-425

3- -- वही -- ,, ,, पृष्ठ- 3

उस बोध से आक्रांत हो गए । हिन्दी साहित्य पर एक प्रकार का यह आरोपित नकारात्मक भावबोध हावी होने लगा ।

आत्मपरायापन अकेलापन और कटे होने को सामाजिक संदर्भ में जोड़कर कहा गया कि "यह स्थिति का विश्लेषण है न कि जस्टीफिकेशन वह अभिशापों की प्रक्रिया है न कि सामाजिक सत्य ।"[1]

"और इस तरह उनके (हिन्दी कवियों) कथन की शब्दावली अजनबीपन : अकेलेपन अलगाव आदि के सूट पहन कर सामने आती है ।"[2]

इस युग की एक अन्य विशेषता मुक्तिबोध रेखांकित करते हैं । "इन सबके अतिरिक्त एक अन्य चीज़ उभरी व्यक्ति स्वतंत्र्य का नारा । यह नारा विशुद्ध रूप से शीतयुद्ध की देन रहा है । हिन्दी का आममध्यवर्गीय बुद्धि-जीवी इसके प्रभाव में आ गया ।" मुक्तिबोध इस छद्म से परिचित थे वे लेखकों को आगाह भी करते रहे कि "उच्चमध्यवर्गीय अभिजात्य मानवतावादी आध्यात्मिकता, व्यक्तिस्वतंत्र्य की प्रणाली के नाम पर साहित्य क्षेत्र से समाजवादी प्रभाव का उन्मूलन करना चाहती है ।"[3]

मुक्तिबोध ऐसी ही राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में लेखन कार्य कर रहे थे । मुक्तिबोध ने जिन दिनों अपना साहित्य रचा एवं अपने भाव-मूल्यों को विकसित किया तब साहित्य क्षेत्र में प्रगतिवादी समीक्षा और शीतयुद्धीय रणनीति की पृष्ठभूमि वाली नकारात्मक भावबोध की नई समीक्षा जैसी दो परस्पर विरोधी विचार सारणियों में आक्रमण प्रत्याक्रमण चल रहे थे । साहित्य में प्रगतिवाद ने आध्यात्मिक दृष्टिकोण को तोड़कर

---

1- धनन्जय वर्मा : आस्वाद के धरातल पृष्ठ-268

2- राजीव सक्सेना : आत्मनिर्वासन और अन्य कविताएं : पृष्ठ-99

3- मुक्तिबोध : नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र : पृष्ठ-23

अत्यंत महत्त्वपूर्ण सामाजिक ऐतिहासिक कार्य किया था । किन्तु प्रगतिवादी विचारधारा के भारतीय व्याख्याता किंचित अपरिपक्व थे । व्यवहारिक स्तर पर इनकी आलोचना अंत: चेतना का सुसंगत मार्क्सवादी विश्लेषण प्रस्तुत कर पाने के अभाव में दिन व दिन कोरे समाजशास्त्रीय आग्रहों से ग्रस्त हो रही थी । इसी वक्त विपक्षियों ने शीतयुद्ध के उद्देश्यों से परिचालित होकर भीषण आक्रमण किया । ये नए समीक्षक अधिक कलामर्मज्ञ थे , कला के आंतरिक नियमों व मानव की सूक्ष्म सम्वेदनाओं की इनकी पकड़ अधिक मजबूत थी । इसलिए जन-विरोधी चरित्र मान्यताओं के बावजूद ये अधिकांश नए लेखकों के मन पर शीघ्रता से अधिकार जमाने में सफल हो गये ।

प्रगतिवादी समीक्षा इस संघर्ष में कमजोर पड़ गई । इस कमजोरी का एक परिणाम तो यह हुआ कि एक लम्बे वर्ष तक साहित्य और जीवन से संबंधित मूलभूत प्रश्नों को भी नहीं उठाया गया । दूसरे नया लेखक घनघोर प्रगतिवाद विरोधी तथा उसकी नीयत पर शक करने वाला होने लगा ।[1] इन्हीं परिस्थितियों में मुक्तिबोध की चेतना निर्मित की ।

---00000---

---

1- अशोक चक्रधर : मुक्तिबोध की काव्य प्रक्रिया : पृष्ठ-21 ।

# द्वितीय अध्याय

## समकालीन कहानी और मुक्तिबोध

(क) हिन्दी कहानी की विकास यात्रा—आरम्भिक रूमानी कहानियों से समकालीन कहानियों तक।

(ख) उनकी समृद्धि में मुक्तिबोध का योगदान।

हिन्दी कहानी की विकास यात्रा का आरम्भ उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में हुआ। नानी दादी के मुंह से निकलकर और लोककथाओं की शैली में आरम्भ होकर तिलस्मी और जादुई कथानक लेकर आगे बढ़ती हुई कहानी, आज स्वतंत्र और महत्वपूर्ण विधा के रूप में प्रतिष्ठित है। काल्पनिक और जासूसी कथानकों की अवास्तविक दुनिया से निकलकर कहानी प्रेमचन्द युग में ठोस जीवन की भूमि पर अवतरित हुई। प्रेमचन्द से पूर्व कहानी काल्पनिकता का इतना अधिक अंश अपने में समेटे हुई थीं कि घटना से आगे बढ़कर घटनाचक्रों में उलझे चरित्रों की पहचान ही नहीं हो पाती। पूर्व प्रेमचन्द काल की कहानियों की सम्पूर्ण रचना के इन्द्रजालिक कथानक में व्यक्ति की मनोवृत्तियों का चित्रण तथा सम्वेदनशीलता का अता-पता ही नहीं मिलता, यथार्थ से तो उनका परिचय ही नहीं था।

प्रारंभिक कहानियों में केवल कुतूहल प्रधान मनोरंजन ही है। कलात्मक सुरुचियों का उसमें नितान्त अभाव रहा है। कहानी में कथानक की तलाश प्रेमचन्द युग में ही अनुभव कर ली गई थी। इन कहानियों द्वारा उनकी शिक्षित रुचि सन्तुष्ट नहीं हो पा रही थी। "पुरानी कथा-कहानियां अपने घटना वैचित्र्य के कारण मनोरंजक तो हैं पर उनमें उस रस की कमी है जो शिक्षित रुचि साहित्य में खोजती है। हमारी साहित्यिक रुचि कुछ परिष्कृत हो गई है, हम हर एक विषय की भांति साहित्य में भी बौद्धिकता की तलाश करते हैं। अब हम काल्पनिक चरित्रों को देखकर प्रसन्न नहीं होते। हम उन्हें यथार्थ के कांटे पर तौलते हैं।"[1]

---

1- साहित्य का उद्देश्य- प्रेमचन्द पृष्ठ-50।

प्रेमचन्द युग के कहानीकारों की चेतना इस तथ्य के प्रति अधिक सजग हुई कि कहानी बाहर के स्थूल घटना चक्रों तथा वैचित्र्यपूर्ण कल्पित चरित्रों अतिरंजित आवेगों और सम्वेगों की सृष्टि में नहीं है वरन मानव मन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्थिति में निवास करती है। "बाहर क्या हो रहा है यह हर कोई देखता है परन्तु घर और दिल के अन्दर क्या हो रहा है ? वहाँ प्रवेश करना उन्हें देखना और फिर वहाँ जो दिखाई दे, उसे दुनियाँ के सम्मुख रखना आसान नहीं है और यही समस्या है जिसे हल करने के लिए बीसवीं सदी का कहानी लेखक साहित्य में उतरा है।"[1]

इस युग में सामाजिक विकृतियों तथा इन विकृतियों के यथार्थ आधार की पकड़ की और स्वं सामाजिक संघर्ष एक विकास का चित्रण कहानीकारों के विषय बने हैं। भगवती प्रसाद वाजपेयी, सुदर्शन, विश्वम्भर नाथ जिज्जा, सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला, विनोदशंकर व्यास वाचस्पति पाठक, सियाराम सरण गुप्त आदि कहानीकारों को प्रेमचन्द ने एक नई प्रकृति तथा नये आयाम दिए। इस युग की कहानियों में व्यक्ति, समाज और उसका जीवन यथार्थ ढंग से अभिव्यक्त हो सका।

प्रेमचन्द युग में कहानी जीवन के अभ्यांतर संघर्षों से युक्त होने के कारण सजग पाठक की माँग करने लगी। बाह्य रूपों का चित्रण अकस्मात भीतरी अन्तर्द्वन्द्वों को पकड़ने का प्रयास करने लगा। "परिस्थितियों के बाह्य रूपों का विश्लेषण करते करते अचानक ही भीतरी अन्तर्द्वन्द्वों के चित्रण के प्रयत्न इस काल के कहानीकारों में दिखाई पड़ने लगते हैं।[2]

यह ब्रिटिश साम्राज्यवादी सत्ता के पूर्ण रूप से स्थापित हो चुकने

---

1- तीर्थयात्रा (भूमिका) सुदर्शन पृष्ठ- 9-10।

2- हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया -डा० परमानन्द तिवारी पृष्ठ- 81।

का काल था । राजनैतिक उथल-पुथल से साहित्य अछूता नहीं था । इन जर्जरित सामाजिक परिस्थितियों में समाज और धर्म के मध्य भी कोई विभाजक रेखा नहीं थी । प्रेमचन्द इसी काल की देन हैं । यह समस्त असन्तोष और विद्रोह उनकी कहानियों में प्रकट हुआ है । बालविवाह विधवा विवाह, वृद्ध विवाह आदि सामाजिक विकृतियों के विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रियाओं को प्रेमचन्द तथा अनुवर्ती कहानीकारों ने कहानी का रूप दिया है । कहानी यथार्थ के धरातल पर विकसित होने लगती है । प्रेमचन्द की लगभग सवा दो सौ कहानियां विषयवस्तु के साथ-साथ शैली की दृष्टि से भी अपना अलग स्थान बनाती हैं । 'शतरंज के खिलाड़ी' से लेकर 'दो बैलों की कथा' तक अनेक विषय उनकी कहानियों की कथावस्तु बुनते हैं । उनकी कहानियों के केन्द्र में शोषित, पीड़ित किसान प्रतिष्ठित हैं । आर्थिक सामाजिक वैषम्य अन्याय और अत्याचार का विरोध उनकी कहानी स्पष्ट प्रतिध्वनित करती है । आदर्शवाद की छाप उनकी कहानियों में है किन्तु धीरे-धीरे वह यथार्थवाद का रूप धारण करती है । 'प्रेमचन्द ने बीस वर्षों में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से आलोचनात्मक यथार्थवाद की लम्बी यात्रा तय की है ।'[1] 'पूस की रात (1939) और कफन (1936) हिन्दी कहानी की प्रौढ़ता का मानदण्ड मानी जाती हैं । मानवीय करुणा और सहानुभूति की दृष्टि से प्रेमचन्द की कहानियां हिन्दी में बेजोड़ दिखाई पड़ती है ।[2]

प्रसाद की कहानियां एक अलग दुनिया अपने में संजोये हुए है । प्रसाद की कहानियां भावप्रधान है उसमें भावमयता दार्शनिक गरिमा से मण्डित होकर उभरती है । प्रसाद की कहानियां कल्पना को दार्शनिकता में लपेटकर युगीन

---

1- हिन्दी कहानी की कहानी : डा० नामवर सिंह : पृष्ठ-13

2- प्रतिनिधि कहानियां (भूमिका ) डा० नामवर सिंह : पृष्ठ-13

सामाजिक परिस्थितियों का प्रस्तुतीकरण करती हैं । उनमें अतीत का गौरव ज्ञान हिलोरे लेता है । रोमांटिक प्रेम कहानी का विषय बनता है आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में प्रसाद जी " कल्पना और भावुकता के कोश हैं "। उनके पात्र काव्यमयी भाषा बोलते हैं । समकालीन सामाजिक स्थितियां भी प्रसाद जी की कहानियों में "आदर्शोन्मुख दार्शनिकता तथा कल्पना के आवेष्टनों में लिपटी हुई प्रकट होती है । अतीत गौरव में रमने के कारण प्रसाद जी ने प्राय: अतीत की पृष्ठभूमि में ही अपनी कहानियों का प्रणयन किया है ।"[1] उनकी कहानियां उनकी जीवन दृष्टि की रोमांटिक और कलात्मक रुचि प्रयोगात्मक रूप से उभर कर आती है । कहानियों के चरित्र प्राय: मध्ययुगीन शौर्य के प्रतीक हैं । जो जोखिम भरे साहित्यिक कार्य करते हुए अपने व्यक्तित्व की पहचान कराते हैं फिर भी उनमें स्थानीय रंग कभी कभी झलक जाता है जैसे "गुण्डा " कहानी में बनारसी रंग उभर कर आता है ।

प्रसाद जी के अतिरिक्त सुदर्शन, कौशिक , चतुरसेन , चण्डी प्रसाद हृदयेश, रायकृष्णदास, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र आदि उल्लेखनीय हैं । इस प्रकार हिन्दी कहानी की परम्परा विकसित हुई और वही एक व्यापक स्वीकृति पा सकी जिसका आधुनिक रूपांतर नई कहानी में हुआ ।

सन् 1930 के आसपास कहानी में बदलाव के लक्षण दिखाई पड़ने लगे थे । प्रेमचन्द के बाद उग्र और निराला ने स्थाई महत्व प्राप्त किया उग्र की कहानियों में यथार्थवादी कला का विकास दृष्टिगत होता है । सामाजिक अन्धविश्वास और धार्मिक पाखण्ड पर व्यंग्य और प्रहार की दृष्टि से उग्र की मुसलमान शीर्षक कहानी महत्वपूर्ण है । पूंजीपतियों को सहयोग कर जनता को धोखा देने वाले और कम्युनिज्म का मुखौटा लगाने वाले नेताओं पर व्यंग्य

---

1- प्रतिनिधि कहानियां (भूमिका) डा० नामवर सिंह : पृष्ठ-14

'कम्युनिस्ट दरवाजे पर' शीर्षक रचना में देखा जा सकता है। राजनीति पर व्यंग्य कहानी के विषय का स्थान लेते हैं। 'प्राइवेट इन्टरव्यू' इसी तरह की कहानी है 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी', अपने यथार्थबोध और रचना कौशल की दृष्टि से उल्लेखनीय है। उग्र व्यंग्य और फंतासी दोनों को कहानी के स्तर पर निभाते हैं। गंगादत्त और गांगी 'शीर्षक कहानी में इसका निर्वाह अविस्मरणीय है। 'मूनगा' कहानी को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इनकी प्रतीक या फंतासी की दृष्टि से महत्वपूर्ण मानते हैं। 'सनकी अमीर' जल्लाद और सुधारक आदि कहानियों में राजनीति और सामाजिक विचारों, रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह स्पष्ट देखा जा सकता है। पाठकों को इन विषयों के माध्यम से झकझोरने का प्रयास सौद्देश्य व आस्थावान ढंग से किया जा रहा था।

इसी दौर में सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' कहानी के क्षेत्र में अपने अनुभव समृद्ध यथार्थवादी रूझानों की ऐसी गठरी लेकर अवतरित हुए जिसके मूल में भारतीय अद्वैत वेदान्त की व्यापक मानवीय करुणा और समाज के स्वस्थ उपादानों के प्रति गहरी घृणा छुपी हुई थी। निराला की यथार्थपरक कहानियों में 'देवी' और 'चतुरी चमार' का अन्यतम महत्व है। अवध में किसान आन्दोलन की प्रगति से निराला का गहरा सम्पर्क था। निराला की कहानियों ने पुराने ढांचे को चरमरा कर रेखाचित्र और संस्मरण के बीच कहानीपन के द्वारा सहजसम्बन्ध स्थापित किया। 'श्रीमति गजानन्द शास्त्रिणी' उनकी महत्वपूर्ण व्यंग्य कहानी है।

सन् 1936 में प्रगतिशील आन्दोलन प्रतिष्ठित होता है। इससे पूर्व ही राहुल सांकृत्यायन का कहानी संग्रह 'सतमी के बच्चे' (1935) प्रकाशित होता है तथा इसके बाद तो प्रगतिशील कहानियों की बाढ़ सी आ जाती है जिसमें राहुल सांकृत्यायन के अतिरिक्त यशपाल, अमृतराय, पहाड़ी, भीष्म साहनी, रांगेय राघव, अमृतलाल नागर, उपेन्द्रनाथ अश्क, भैरवप्रसाद गुप्त आदि प्रमुख हैं।

इन लेखकों के कहानी के विषय क्या थे । किन मूल्यों का विज्ञापन इनकी कहानियाँ कर रहीं थीं । इसका संक्षिप्त लेखा जोखा समकालीन मुक्तिबोध की कहानी को समझने तथा उनकी कहानी की विषयवस्तु के महत्त्व को समझने के लिए अनिवार्य है ।

राहुल जी के पात्र (सतमी के बच्चे) गाँव से आते हैं । कथानक किसानों और खेतिहर मजदूरों को लेकर चलता है । पात्र सामाजिक आर्थिक ढाँचे से पीड़ित है और शोषण की व्यवस्था में पिस रहा है । आर्थिक मजबूरियों से विवश, उत्पीड़ित जनसमूह की दुरावस्था का सहानुभूति पूर्ण चित्रण इन कहानियों की विशेषता है । सतमी के पाँच बच्चे, भूख और बीमारी से तड़पते हुए मर जाते हैं । ढीहबाबा " शीर्षक कहानी 1895 के अकाल के भीषण नतीजे दर्शाती है ।

1942 राहुल सांकृत्यायन जी का दूसरा संग्रह "वोल्गा से गंगा " में ऐतिहासिक भौतिकवाद का निरूपण कथा चरित्रों के माध्यम से भारत के इतिहास और पुराण के सन्दर्भों में लपेट कर किया गया है । कृषिक्रान्ति की कथाभूमि पर रचित "रेखा भगत " कहानी में रेखा भगत 1800 ई० का आदमी है । कार्नवालिस जमींदारी प्रथा का आरम्भ सामन्तवाद और ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय विकसित जमींदारी प्रथा का फर्क उभरा है । इनकी कहानियों में कथा की अपेक्षा वातावरण की प्रधानता है ।

प्रगतिशील कहानियों के कहानीकारों में यशपाल का सर्वोपरि स्थान है । प्रगतिशील आन्दोलन के समानान्तर हिन्दी कहानी को व्यक्ति की कुण्ठा की तरफ ले जाने वाले कहानीकारों में यशपाल का महत्व स्वीकार किया जाता है । पिंजरे की उड़ान (1939) वो दुनिया (1941) तर्क का तूफान (1943) ज्ञानदान (1944) अभिशप्त (1944) भस्मावृत्त चिंगारी (1946)

फूलों का कुर्ता (1949) धर्मयुद्ध (1950) उत्तराधिकारी (1951) यशपाल की कहानियों के विषय सामाजिक यथार्थ के अन्दर कुंठित व्यक्तिवादी यौन पीड़ा को ध्वनित करते हैं। डा० राम विलास शर्मा के शब्दों में 'यशपाल के पात्र' जन जीवन के प्रतिनिधि नहीं है। वे उस वर्ग के प्रतिनिधि हैं जिनके लिए सेक्स और आत्म पीड़ा की समस्या ही प्रधान है। नारी पराधीनता के यथार्थवादी पहलुओं पर यशपाल की कहानियां रची जा रही थीं।'[1]

रामविलास जी की इस बात से हम सहमत नहीं है। यह सही है कि यशपाल में सेक्स और आत्मपीड़न की अभिव्यक्ति के प्रति आग्रह है किन्तु यही पात्र उनका वस्तुय नहीं है। यशपाल प्रेमचन्द के बाद सबसे अधिक सामाजिक यथार्थ को लेकर चलने वाले कहानीकार हैं। स्थितियों का निरूपण करके वे उन उत्पन्न हुई स्थितियों के बदलाव के बाद प्रतिबद्ध दिखाई पड़ते हैं।

मध्यवर्ग के झूठे दिखावे और दीनता को छलने की कोशिश कर आत्मग्रस्तता से पीड़ित निम्न पूंजीवादी वर्ग की कहानियां भी इस दौर में लिखी गई। यशपाल की 'परदा' कहानी यथार्थवादी सृजनात्मकता से कल्पित है। करुणा और उसके व्यंग्य को एक साथ एक ही कथानक के माध्यम से उभारते हैं। इन कहानियों का विषय मध्य वर्ग है। यशपाल की परदा, गुडेरी, काला आदमी, रोटी का मोल देवी की लीला तथा मक्खी या मकड़ी कहानियां प्रगतिशील कहानियों में विशेष महत्व की हैं। ये कहानियां मध्यवर्ग की ऐतिहासिक नियति के यथार्थ की पर्तों के उद्घाटन करने वाली कहानियां हैं। मध्यवर्ग के पात्रों के माध्यम से ही समाज के वर्ग संघर्ष को भी उभारते हैं।

---

1- प्रगतिशील साहित्य की समस्याएं : राम विलास शर्मा : पृष्ठ-119

'आदमी या पैसा 'शीर्षक कहानी के चरित्र नायक एक पत्रकार हैं जो स्वयं महसूस करते हैं कि वे पूंजीपति मालिक के हाथ में चाबुक की तरह है और उनका मालिक उन्हें जनमत पैदा करने की कीमती मशीन समझता है। वह उनके श्रम के बदले में उन्हें डेढ़ हजार रुपये देता है। वह इसलिए कि अपनी सामाजिक और राजनीतिक स्थिति बनाए रखें। नई दुनिया' में माथुर के माध्यम से वर्ग संघर्ष की गहरी समझ प्रकट हुई है। मध्यवर्ग के ऐसे अनेक टाईप पात्रों को निजी चारित्रिक विशेषताओं को उभारकर यशपाल ने मध्यवर्ग का सम्पूर्ण सामाजिक ऐतिहासिक सन्दर्भ में चित्रण किया है। मध्यवर्ग के अतिरिक्त, पहाड़ी जीवन के कुली और रिक्शावालों को भी यशपाल की कहानियां समेटती हैं। हिन्दुस्तान के इन महनतकशों की दुर्दशा की कलात्मक अभिव्यक्ति यशपाल की कहानियां करती हैं। नई दुनिया ' अभिशप्त ' तथा भवानी माता ' ऐसी ही कहानियां हैं। घरेलू नौकर की यातना और मालिकों द्वारा उनका शोषण 'कुत्ते की पूंछ ' और ' एक राज ' कहानियों के द्वारा हुआ है। खेतिहर क्रांति की कथात्मक अन्तर्वस्तु के साथ किसान जीवन का चित्रण 'डरपोक' कश्मीरी हुकूमत का जनून ' तथा 'करुणा' कहानियों के माध्यम से हुआ।

इसी प्रगतिशील साहित्यिक आन्दोलन के दौरान व्यंग्य विधा को क्लासिक ऊंचाई प्राप्त होती है। यशपाल की 'नीरस रसिक ' धर्मपाल होली नहीं खेलता ' शहनशाह का न्याय प्रतिष्ठा का बोझ तथा 'पर्दा ' शीर्षक कहानियां व्यंग्य का यथार्थवादी एवं कलात्मक रूप प्रस्तुत करती हैं। यशपाल के कथानकों में पर्याप्त विविधता मिलती है उसमें न केवल समाज का यथार्थ उत्पीड़ित वर्ग की आर्थिक सामाजिक पराधीनता का चित्रण है बल्कि मानव व्यवहार और आचरण के अन्तर्गत पर्तों को खोलने का भी प्रयास है।

---

1- हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष- शिवदान सिंह चौहान : पृष्ठ-191

'यशपाल की भूल समस्या यह है कि समाज के विषम संगठन ने मनुष्य जाति को ही दोविरोधी वर्गों में नहीं बांटा है बल्कि मनुष्य के विचार और व्यवहार या आचरण में भी एक द्वैत या विषम पैदा कर दिया है इस द्वैत या विषम के प्रति पाठकों को सचेत करना ही यशपाल का प्रधान उद्देश्य है ।'[1]

इस प्रकार यशपाल में कथानक विविधता उनकी यथार्थ दृष्टि की व्यापकता का परिचायक है 'मनु की लाम ' धर्मरक्षा' पांव तले डाल, कलाकार की आत्महत्या आदि कहानियां विषय की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं ।

उपेन्द्रनाथ अश्क भी लगभग इन्हीं विविध कथानकों को लेकर लिख रहे थे । जुदाई का गीत (1933) डाची (1937) कोंपल (1940) पीटे 'काले साहब ' दो धारा ' तथा 'पिंजरा ' इनके कहानी संग्रह हैं । भावनात्मक और सम्वेदनात्मक स्तर पर समाज की विसंगतियों की गहरी पकड़ अश्क में मिलती है । वैचारिक धरातल पर अश्क की कला में वह परिपक्वता नहीं है परन्तु यथार्थवादी उद्घाटन की दृष्टि से ये कहानियां अपना महत्व रखती हैं ।

अज्ञेय और जैनेन्द्र कुमार प्रेमचन्द की रवायत से इन्कार करके आगे बढ़ना चाहते थे । अज्ञेय ने 'रोज ' जैसी कहानी लिखी जो हिन्दी कहानी के विकास के अगले कदम का संगमील बन पाई । अज्ञेय की कहानियां क्रान्ति और विद्रोह की पृष्ठभूमि से शुरू हुई और अनेक व्यक्ति सामाजिक धरातलों का स्पर्श करती हुई, आत्म निष्ठ और आत्मकेन्द्रित होती गई । 'सांप' 'पठार का धीरज ' और 'कलाकार की मुक्ति ' अज्ञेय की प्रतीकात्मक कहानियां हैं । अज्ञेय की कहानियों में भाषा-शैली की विशिष्ट मौलिकता एवं विलष्टता मिलती है । हीली बैान की बजाय 'रोज 'परम्परा की कहानी है । कथ्य की दृष्टि से उतनी नहीं जितनी शिल्प की दृष्टि से ।

---

1- हिन्दी साहित्य के 80 वर्ष -पृष्ठ-191, शिवदान सिंह चौहान ।

जैनेन्द्र की कहानियां एक नया आयाम लेकर उपस्थित हुई । जैनेन्द्र की कहानियों में भी वस्तु और शिल्प की विविधता मिलती है । दार्शनिक, पौराणिक, प्रतीकात्मक, ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक हर क्षेत्र में उन्होंने प्रयोग किये हैं । किन्तु उनकी कहानियां अधिकांश मनोविज्ञान और दार्शनिकता के सम्मिलित रूप से निर्मित है । 'पत्नी ' निराकरण, बेकार, आदि कहानियां उनकी इसी प्रकार की कहानी है ।

प्रगतिशील कहानीकारों में अमृतराय, रांगेय राघव और बेनीपुरी को इस दृष्टि से महत्वपूर्ण मानते हैं कि कहानी में बदलाव का प्रयत्न इन लोगों में सबसे अधिक दृष्टिगत होता है अमृतराय के प्रकाशित कहानी संग्रह, जीवन के पहलू (1937) इतिहास ' कस्बे का एक दिन ', 'लालधरती है । इनकी कहानियां भी सामने सके जिन्दगी और समाज के चरित्रों और वर्गों से अपनी सामग्री जुटाती है । सामन्तवाद, पूंजीवाद, साम्राज्यवाद धार्मिक विद्वेष, जाति प्रथा, वैवाहिक रूढ़ियों, वर्ग समाज के भेदभाव के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया इनकी कहानियों में व्यंग्य द्वारा उभरती है ।

रांगेय राघव की कहानी 'तबेले का धुंधलका ' महत्वपूर्ण है । अत: बुद्धकालीन सन्दर्भों से लेकर भारतीय स्वाधीनता संग्राम तक अनेक विषयों पर इस दौर में कहानियां लिखी गई । राजेन्द्रयादव इस दौर के शिल्पगत वैशिष्ट्य को रेखांकित करते हुए कहते हैं ' रांगेय राघव ने तूफानों के बीच अमृतराय ने 'लाल धरती ' और भगवती शरण उपाध्याय ने इतिहास के पन्नों पर 'खून के धब्बे ' इत्यादि संग्रहों में जिस आवेश और सामाजिक चेतना के बोलते दस्तावेज दिए हैं, उनकी उपलब्धि कला विधा के रूप में कितनी है यह भले ही आज सन्देहास्पद हो सकता है लेकिन अपने से अलग हो सकने की दृष्टि और सामाजिक सचेतना के रूप में अपने आज के सम्पूर्ण साहित्य को एक बहुत बड़ी पृष्ठभूमि अवश्य दी है । इसके साथ ही उसने हिन्दी भाषा की शास्त्रीय निर्जीवता , पंडिताऊ शब्द रचना और पिलपिले आडम्बर को

तोड़कर उसे आधुनिक मुहावरा, शक्ति और सामर्थ्य दिए जिसका प्रारंभ प्रेमचन्द व निराला और उग्र ने किया था।[1] डा० नामवर सिंह का इन दशकों की कहानियों के विषय में मत है कि चौथे और पांचवे दशक में हिन्दी कहानी का संसार व्यापक हुआ तथा अनेक कहानीकारों के प्रयत्न से कहानीकारों के शिल्प में विविधता आई। यह वही काल है जब द्वितीय विश्वयुद्ध की लपेट में भारतीय जीवन विषम स्थितियों की यातना भोग रहा था।सन् 1942 की स्वत: स्फूर्त क्रान्ति का निर्मम दमन और बंगाल का अकाल इसी काल की विभीषिकाएं हैं कहना न होगा कि जागरूक कहानीकारों ने इस दौर के सामाजिक यथार्थ को अपनी कहानियों में चित्रित करके हिन्दी कहानी की परम्परा को समृद्ध किया।[2]

एक संक्रमण काल में नई कहानी का जन्म होता है जहां एक ओर अंतर्राष्ट्रीय रंग मंच पर द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद दिग्भ्रमित युवा रचनाकार की मानसिकता उस समय के समस्त संदर्भों में अपनी मानसिकता का निर्माण कर रही थी। दूसरी ओर राष्ट्रीय स्तर पर भी आजादी के बाद के यह कुछ प्रारंभिक काल राजनीति, आर्थिक, साहित्यिक हर तरह से लड़खड़ा रहे थे। इसलिए नई कहानी में राजनीति के प्रति कोई वर्गीय स्वर तीव्र और स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आता। केवल कुछ एक कहानियों और व्यंग्य कथाओं में जहां व्यवस्था और राजनीति के संबंध में प्रश्न उठा है वहां इसका यह स्वर स्पष्ट और प्रत्यक्षत: सुनाई पड़ता है। जैसे हरिशंकर परसाई की कहानी 'भोलाराम का जीव' 'पोस्टरी एक्टा', निर्मल वर्मा की 'लंदन की एक रात' कमलेश्वर की कहानी 'जार्ज पंचम की नाक' आदि।

---

1- कहानी : स्वरूप और सम्वेदना : राजेन्द्र यादव पृष्ठ-40 (नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली: प्रथम संस्करण -1968)।

2- प्रतिनिधि हिन्दी कहानी : डा० नामवर सिंह : पृष्ठ- 18

आंचलिक कहानीकारों में फणीश्वरनाथ रेणु, शिवप्रसाद सिंह मार्कण्डेय आदि में भी राजनीतिक पुट मिलता है। जैसे फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी 'जलवा'। नई कहानी में सामाजिक आर्थिक संदर्भ निम्न मध्यवर्ग, मध्यवर्ग की मानसिकता की अभिव्यक्ति हुई है। राजेन्द्र यादव कमलेश्वर, निर्मल वर्मा, भीष्म साहनी सभी रचनाकार, शहरी जीवन के मध्यवित्तीय चरित्रों के जीवन को ही अपनी कहानी में व्यूय बना रहे थे। भीष्म साहनी की कहानी 'चीफ की दावत' पूंजीवादी समाज में मध्यवर्गीय जीवन के खोखलेपन को उजागर करती है। इन कहानियों में पाश्चात्य जीवन से प्रभावित मध्यवर्ग की चर्चा है। स्त्री-पुरुष के संबंधों पर ही अधिकतर कहानियां लिखी गई हैं।

अकहानी की शुरुआत सन् 60 के बाद हुई जिनमें रविन्द्रकालिया का नाम उल्लेखनीय है। इन कहानियों में जो स्वर स्पष्ट रूप से उभरता है वह है मूल्यों और परम्पराओं को तोड़ने का आग्रह जैसे ज्ञानरंजन की 'पिता' और दूधनाथ सिंह की 'सपाट चेहरे वाला आदमी' श्रीकान्त वर्मा की 'शवयात्रा', रवीन्द्रकालिया की 'नौ साल छोटी पत्नी'। हालांकि इन कहानियों में पुराने मूल्यों और मान्यताओं को तोड़ा गया है किन्तु साथ ही साथ नये मूल्यों को स्वीकार भी किया है ये कहानियां मूल्यहीनता और विसंगतियों को व्यापक सामाजिक संदर्भ में न खोजकर सिर्फ यौन सन्दर्भों में खोजने का प्रयास करती हैं। परिणाम स्वरूप कुण्ठा, अकेलेपन, टूटन, संत्रास जैसे व्यूय केन्द्र में लिए हुए है।

अ-कहानी की विकृतियों के प्रतिक्रिया स्वरूप सचेतन कहानी की घोषणा हुई जिस धारा से जुड़े मुख्य कहानीकार हैं --महीपसिंह, मनहर चौहान, बलराज पंडित, रामकुमार भ्रमर, सुखबीर, कमलेश्वर, वेदराही आदि किन्तु जीवन की कहानी होने का दावा करने के बावजूद सचेतन कहानी स्व सशक्त कथा धारा के रूप में अधिक टिक न सकी।

सातवें दशक का अंत और आठवें की शुरुआत में कलात्मक बनावट के साथ-साथ सशक्त राजनैतिक चेतना की समक्ष प्रकट होती है। इस दौर के कहानीकारों में मार्कण्डेय, ज्ञान रंजन, काशीनाथ सिंह, असगर वजाहत, पंकजविष्ट आदि उल्लेखनीय हैं। महिला लेखिकाओं में मृदुला गर्ग, मृणाल पाण्डेय, कृष्णा सोबती, उषाबाला हैं जो समकालीन कहानी से भी जुड़ी हुई हैं। इन कहानियों में अनुभव की परिपक्वता मिलती है। विषय वैविध्य भी मिलता है।

मुक्तिबोध की कहानियां इस विकास यात्रा में क्या योगदान देती हैं ? उनकी कहानियों का कथ्य और विषय क्या है ? और अगर वह एक अलग पहचान बनाती तो किस प्रकार ? इन प्रश्नों का उत्तर उनकी कहानियां ही देती है जो नई कहानी के किसी आन्दोलन की उपज नहीं वरन् एक सजग कलाकार की सहज अभिव्यक्ति है जो कभी कभी तो अचानक भी गुम कर देती हैं।

मुक्तिबोध का योगदान : काव्यात्मक साधना के साथ-साथ कहानी लेखन की ओर मुक्तिबोध की प्रवृत्ति आरम्भ से ही रही थी, यद्यपि कहानी वे बहुत कम लिखपाते थे। उन्होंने स्वयं लिखा है कि 'कहानी तत्व मेरे उतना ही समीप है जितना काव्य। परन्तु कहानियां मैं बहुत कम ही लिखता था। अब भी कम लिखता हूं।'[1]

काठ का सपना (प्रथम संस्करण 1907) मुक्तिबोध का पहला कहानी संग्रह है। इसमें ग्यारह कहानियां संगृहित हैं। उनकी कहानियां संगृहित रूप से पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकाश में आ चुकी थी। आठ मुक्तिबोध के जीवनकाल में और तीन मरणोपरांत। 'मोह और मरण'

---

1- तार सप्तक (मुक्तिबोध का वक्तव्य) पृष्ठ- 6।

इस संग्रह की सबसे पुरानी कहानी है । यह वीणा के जनवरी 1940 के अंक में सबसे पहले छपी थी । विपात्र इस संग्रह की सबसे अंतिम रचना है ।

दूसरा संग्रह-मुक्तिबोध के दूसरे कहानी संग्रह 'सतह से उठता आदमी' (प्रथम संस्करण 1971) में नौ कहानियां हैं 'आखेट' इसकी सबसे पुरानी कहानी है । इसका प्रकाशन वीणा के अक्टूबर (1936 के अंक में 'मानवी पशुता' नाम से पहली बार छपी थी ।

मुक्तिबोध मूलत: कहानीकार नहीं थे । मुक्तिबोध युग से संघर्ष कर रहे थे । मुक्तिबोध का युद्ध भीतर और बाहर दोनों स्तर पर उन्हें कचकोर रहा था । युग की वास्तविकता और प्रकट के बीच मध्यवर्ग पिस रहा था । मुक्तिबोध स्वयं निम्नमध्य वर्ग से आए थे । मुक्तिबोध ने मध्यवर्ग को राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों ही स्तरों पर जूझते हुए देखा । मध्यवर्ग की तमाम बेचैनी मुक्तिबोध की अपनी थी । उनकी कहानी के भीतर किसी सजग कहानीकार के दर्शन नहीं होते वरन् एक मध्यवर्गीय जिन्दगी जीने वाले एक सजग बुद्धिजीवी की छटपटाहट का दर्शन होता है । उनकी कहानी किसी आन्दोलन की उपज नहीं थी । मुक्तिबोध का युग गुलामी और स्वतंत्रता के संधि का युग था। आजादी के साथ-साथ व्यवस्था आजादी के नाम पर मंच पर फंडा फहराती रही और साहित्य के नाम पर आन्दोलन चलते रहे । इस आजाद देश में उस वक्त पूंजीपतियों को समर्थन मिला, पिसने लगा बेचारा मध्यवर्ग । मुक्तिबोध की कविता और कहानियां इसी स्तर पर युग की वास्तविकता को पकड़ती है । 'मुक्तिबोध की कहानियों की प्रेरणा कहानी का कोई आन्दोलन नहीं था हर रचना, उनके लिए, भयानक शब्दहीन अन्धकार की जो आज भी भारतीय जीवन के चारों ओर चीन की दीवार की तरह खींचा हुआ है... लांघने की एक और कोशिश थी -- सारा इतिहास मुक्तिबोध के लिए एक चुनौती था । मध्यवर्ग इस इतिहास की एक गुत्थी है जिसे मुक्तिबोध समझना सुलझाना चाहते थे । मुक्तिबोध के चारों ओर मध्यवर्ग का

नैराश्य कुण्ठा अवसाद आत्मवंचना और आत्मपरस्ती थी । मध्यवर्ग के संकट को मुक्तिबोध ने जितना समझा अन्य किसी लेखक ने नहीं समझा है । मुक्तिबोध की कहानियाँ मध्यवर्ग के विरुद्ध ज़िरह है।वे मध्यवर्ग के एक लेखक का आत्मस्वीकार मात्र नहीं है बल्कि अपने वर्ग के संहार का स्वप्न भी है उनकी कहानियों में केवल एक ही पात्र है जो अलग अलग नामों में अलग अलग रूपों में और कभी-कभी लिंग परिवर्तन कर उपस्थित होता है । यह पात्र मध्यवर्ग के आध्यात्मिक संकट का गवाह व्याख्याता है "कायर " भोक्ता, विरोधी, सब कुछ है । कुछ हदतक यह पात्र स्वयं मुक्तिबोध है और कुछ हदतक यह वह व्यक्ति है जो मुक्तिबोध के साथ चलता है । वह केवल मुक्तिबोध को सुनता ही नहीं उन्हें सुनाता भी है । नसीहत भी देता है । उन्हें फुसलाने की कोशिश भी करता है । मुक्तिबोध की कहानियाँ दो पात्रों के बीच एक स्वयं मुक्तिबोध और दूसरा मुक्तिबोध का सहयात्री एक अनन्त वार्तालाप है ।"[1]

मुक्तिबोध सड़कों पर भटकते हैं,गुफाओं और अन्धकारों में खोजते हैं।उनकी कहानियाँ शहरों की अंधेरी सड़कों पर भटकती हैं उनकी कहानियों में बात की तह तक पहुंचने का प्रयत्न दिखाई पड़ता है "आखिर बात क्या है[2]? यह प्रश्न तीर की भाँति उनकी कहानियों में बिंधा है । अपने भीतर इस प्रश्न को दबाये वे जिन्दगी के अनजान धुंधले अन्धेरे रास्तों में भटकते हैं । यह सड़क कहाँ जाती है । निर्मल वर्मा लिखते हैं "वह बहुत लम्बी सड़क थी जो हिन्दुस्तानी कस्बों की तार तार दरिद्रताओं यातनाओं और आत्मग्लानियों के बीच गुज़र कर जाती थी । कस्बे जिनमें न आधुनिक महानगरों का अभिजात्य है न गाँवों का मटमैला धीरज बल्कि जहाँ सिर्फ दम तोड़ती बेचैनी है,जिसमें

---

1- मुक्तिबोध रचनावली 3 -भूमिका - श्रीकान्त वर्मा : पृष्ठ-

2- मुक्तिबोध की गद्य कथा : निर्मल वर्मा : पृष्ठ- 3

निम्न मध्यवर्ग के प्राणी वैन गौंग के बन्दियों की तरह अन्तहीन चक्कर लगाते ही रहते हैं ।[1] अनेक हिन्दी लेखकों ने छोटे शहरों की ऊब निरर्थकता और हताशा के बारे में लिखा है किन्तु मुक्तिबोध उन लेखकों में से थे जिन्होंने कस्बों के यथार्थ को स्वयं भोगा था वह कोई बाहरी यथार्थ नहीं था बल्कि उनके भीतर की छटपटाहट थी मुक्तिबोध अकेले लेखक थे जिन्होंने एक कस्बाती भारतीय के आध्यात्मिक संकट को उसकी समस्त कमजोरियों, आत्मभ्रान्तियों और बीहड़ दुःस्वप्नों के बीच पकड़ा था । जो सिर्फ बाहरी यथार्थ की कहानी नहीं थी बल्कि स्वयं उनकी आत्मा का निजी दस्तावेज था । एक कारण है हम उनकी कहानियों निबन्धों और डायरी के बीच कोई विभाजक रेखा नहीं खींच सकते उनका गद्य सब परम्पराओं को भेदता हुआ एक पैना, पीड़ित सोच बन जाता है ।[2]

मुक्तिबोध ने इस पीड़ा को व्यक्तिगत स्तर पर भोगा था, झेला था । नौजवान का रास्ता शीर्षक से मुक्तिबोध रचनावली में संकलित लेख में वह लिखते हैं "इस लेख का लेखक एक मामूली आदमी है । अपनी बीती हुई जवानी से उसने सिर्फ सबक सीखे हैं । उस नौजवान के तकाज़े उसके सामने आज भी जिन्दा हैं । उसके सवालात उसे आज भी पुकारते हैं फर्क सिर्फ इतना है कि घुटने फोड़ने वाली ठोकरें आज उसेपहले सलाम करती हैं फिर ठेंस लगाती हैं । तो ऐसे मामूली आदमी के पास इतनी बड़ी हिमाकत नहीं है कि वह नयी पीढ़ी के नौजवानों को जिनके अपने नए तजुर्बात हैं को सीख दे सके ।[3]

मुक्तिबोध की कहानी में भीतरी स्तर से बाहरी अनुभव और भीतरी दुनिया के बीच संबंध जुड़ता है वह आत्मपरक भी हो उठता है परन्तु वह

---

1- निर्मल वर्मा : मुक्तिबोध की गद्यकथा : पृष्ठ-3

2- निर्मल वर्मा : मुक्तिबोध की गद्यकथा : पृष्ठ-3

3- मुक्तिबोध रचनावली :6 : नौजवानी का रास्ता :पृष्ठ-25

सिर्फ इसलिए कि वह मध्यवर्ग की जुबान है । मुक्तिबोध की कहानी में उनका अपना चिन्तन सोच मुखरित होता है। उनके दिल दिमाग आपस में बहस करते हैं लड़ जाते हैं । मध्यवर्ग की उलझी गुत्थियाँ उसमें एक-एक कर खुलती जाती है ।"मुक्तिबोध की कहानी अपने भीतरी स्तर से बाहरी अनुभव को भीतर की दुनिया से जोड़ता है । उनके गद्य पर आत्मपरक शैली का जो आरोप लगाया जाता है तो वह इसलिए भी हो सकता है कि वह मध्यवर्गीय जिन्दगी की जुबान है । एक ऐसी जुबान जो शरीर का अंग है परन्तु उसका फंक्शन एकदम दिल से जुड़ा है । मुक्तिबोध के गद्य में उनका सोच एक तरह से बोलता है -बोलता हुआ सोच, दिल और दुनिया के बीच एक अन्तहीन वार्तालाप जिससे मध्यवर्गीय जिन्दगी की गाठें एक के बाद एक खुलती जाती हैं ।"[1]

इस दौर के अनेक कहानीकारों में मध्यवर्गीय जिन्दगी की घुटन, पीड़ा छटपटाहट को कहानियों का विषय बनाया है किन्तु मुक्तिबोध और उनमें एक फर्क है अन्य कहानीकारों में घटनाओं और पात्रों के बीच टकराहट से कथानक का जन्म होता है जबकि मुक्तिबोध के यहां जिन्दगी से कथानक के बीच सोच की घटना जन्मती है,जिसका प्रथम पात्र और भोक्ता स्वयं मुक्तिबोध है ।

मुक्तिबोध ने हिन्दुस्तानी शहरों में पल रहे आदमी जो धूल और गर्द से लिपटा है । पेट भरने के लिए मर-मर कर जीना ही जिसकी जिन्दगी है और जो घिसट घिसट कर जिन्दगी का बोझ ढो रहा है उसे महसूस किया था । एक अदने आदमी पर जिन्दगी का यह बोझ कितना असह्य और भयानक हो सकता है उसे मुक्तिबोध ने जितनी वेदना से महसूसा था शायद ही किसी और लेखक ने किया हो । उनके अनुभवों और इस भोगे हुए यथार्थ की पुष्टि

---

1- निर्मल वर्मा : मुक्तिबोध की गद्य कथा : पृष्ठ- 2

उनकी डायरी का पात्र कहता है "आज की खास दिक्कत यह नहीं है कि साहित्य में जीवन के तत्व कम है यह कि जीवन में बहुत अधिक है वह जीवन जो जिया जाता है या भोगा जाता है उसमें इतने अधिक तत्व है कि सुबह से शाम तक मन पर उन तत्वों का इतना अधिक सम्वेदनात्मक प्रहार होता है रहता है कि... मन जानबूझ कर अपने शून्य का निर्माण कर लेता है..... ईश्वर ने या समाज ने उसे इतना कम अवकाश दिया है कि अनेक कलात्मक नमूनों में उनकी पुनर्रचना नहीं हो पाती । ये तत्व मर नहीं जाते अण्डरग्राउंड चले जाते हैं ।"[1] मुक्तिबोध की कहानियों का सत्य इसी अण्डरग्राउंड में दबा सत्य है प्रकट में सिर्फ बातचीत है । कथानक कहीं है कहीं नहीं भी बन पाता । निर्मल वर्मा के अनुसार "मुक्तिबोध का प्रश्न जिन्दगी के बारे में न होकर उस असली बात, उस छिपे सत्य को लेकर था जो कहीं अनुभवों के अण्डरग्राउंड में दबा रहता है ।"[2]

मुक्तिबोध की कहानियों में सुख और सन्तोष से परे एक निश्चित सत्य की तलाश है जहां चीजों के बीच रहकर भी उनकी छलना से मुक्त रह सके विपात्र का एक वाक्य इसकी पुष्टि करता है "

मैं चीजों के बीच रहना चाहता हूं ठीक उनके बीच में ।

मुक्तिबोध की कहानियां अधूरी सी है मानो प्रतीक्षारत हो । कैसी प्रतीक्षा ? इसका उत्तर उनकी कहानियों के कथ्य में नहीं बल्कि कथ्य स्थल में ढूंढना होगा ।

उनकी कहानियों में आर्द्रता नहीं है बल्कि एक पथरीलापन है एक पठार सी कठोरता है उसमें काव्यात्मक लचक कहीं भी नहीं है । वह सवेदनात्मक

---

1- निर्मल वर्मा : मुक्तिबोध की गद्य कथा- पृष्ठ-2

2- --वही -- ,, ,, पृष्ठ- 2

कवि की अभिव्यक्ति होकर भी सलेट सी काली और ठोस है वह कहानीकारों का गद्य भी नहीं है जिसमें पात्रों की नियति घटनाओं द्वारा उद्घाटित होती है उनकी कहानियों में उद्घाटित कुछ भी नहीं होता, प्रथम वाक्य से अंतिम पूर्णविराम तक सबकुछ सपाट, निश्चित पूर्व निर्धारित जान पड़ता है फिर भी उसमें एक चीज़ जो बड़ी तीव्रता से उभरती है वह है बेचैनी, मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी की बेचैनी । फिर भी मुक्तिबोध की कहानियां कहानियां सी नहीं लगती । जबकि अनुभव का क्षेत्र वही है, विषय वही है जिस पर 'नई कहानी' ने इतने ही हल्ले के साथ हमला किया था -- बेकारी गरीबी, संयुक्त परिवारों की घुटन, मृत्यु आत्महत्या ये सब पहचाने तत्व मुक्तिबोध की कहानियों में हैं किन्तु जहां दूसरे कहानीकार इनका इस्तेमाल कथानक में गतिमयता लाने में करते हैं वहां मुक्तिबोध इसके विपरीत कहानी के प्रवाह को रोककर इन सब तत्वों को जैसा का तैया जड़ित, जमी हुई मूर्छित अवस्था में छोड़ देते हैं । मानो उन्होंने चीजों के संचारी जीवन को क्षणभर के लिए फ्रीज़ कर लिया हो, ताकी वह मन की प्रयोगशाला में उन तत्वों का एक एक कर परीक्षण कर सकें जिनके मिश्रण से वेदना बनती है । निर्मल वर्मा के शब्दों में 'वेदना की छाया उनपर मंडराती रहती है । मुक्तिबोध की कहानियां यदि हम उन्हें सचमुच कहानियां कह सके इस सर्वव्यापी वेदना को पात्रों या घटनाओं द्वारा उतना व्यक्त नहीं करती वह सड़क के दोनों ओर एक ठहरे, पथरास्काल खण्ड की तरह छायी रहती है जिसके बीच मुक्तिबोध के पात्र अपने या दूसरे से बात करते हुए निकल जाते हैं यह अद्भुत है कि मुक्तिबोध की कहानियों में सब कुछ स्थिर है सिर्फ बात चलती है । यह चलती हुई बात जिन्दगी की ठहरी हुई बात को समझना चाहती है उनकी परत दर परत खोलती जाती है । किसी एक कहानी में यदि एक परत खुलती है तो दूसरी कहानी में उसी बात की दूसरी बात जब तक बात पूरी नहीं होगी

कहानी कैसे समाप्त होगी ? इसलिए मुक्तिबोध की कोई कहानी साफ सुथरी सम्पूर्ण रचना नहीं बन पाती , वह एक भटकती हुई आत्मा की डायरी है । डायरी में हर सत्य अगले पन्ने के सत्य की प्रतीक्षा में अधूरा पड़ा रहता है ।[1]

उनकी कहानियां अभिव्यक्ति की बेचैनी की अभिव्यक्ति है । मुक्तिबोध मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी के यथार्थ को कहानियों में खोल देते हैं । उनकी यह बेचैनी उनके डायरी के पन्ने पर भी प्रकट होती है । "आज कई दिनों से एक विचित्र मनःस्थिति से गुजर रहा हूं । भयानक आत्मग्लानि ने घेर कर लिया है । मैं क्या हो सकता था लेकिन नहीं हुआ । मेरे विकास के सम्भावित विकल्प खड़े हो गये और मैंने पाया कि वह महान आत्मशक्ति मुझमें नहीं है जो मुझे पूर्ण रूपान्तर उपस्थित कर दे । मैं क्या से क्या हो जाऊं । मैं अपने खुद के कन्धों पर चढ़ जाना चाहता हूं, आकाश छूना चाहता हूं चाहे उस आकाश में हाइड्रोजन अणु का धुंआ ही क्यों न हो। मैं पृथ्वी के पेट में घुस जाना चाहता हूं चाहे उस विवर में नाइट्रोजन बम के विस्फोटक पयोग ही क्यों न होते हों ।"[2]

उनकी कहानियों के पात्र इसी तरह बेचैन नजर आते हैं । साधारण आदमी की घुटन का अन्दाजा उन कहानियों द्वारा लगता है । श्रीकान्त वर्मा ने "काठ का सपना" की भूमिका में लिखा है "चेखव की "पीड़ा" यदि साधारण आदमी के दर्द की अभिव्यक्ति की सबसे उमदा कहानी है तो ब्रह्मराक्षस का शिष्य कलाकार की अभिव्यक्ति की बेचैनी की सबसे अर्थ गर्भित कहानी है । उस कलाकार से अधिक अकेला और कौन हो सकता है जो यह

---

1- निर्मल वर्मा : मुक्तिबोध की रचना कथा - पृष्ठ-9

2- मुक्तिबोध रचनावली 4 - एक साहित्यिक की डायरी : पृष्ठ-111

अनुभव करता है कि वह अपने अनुभव के आगे नंगा है , उसका सारा जीवन एक भूतहा मकान है और वह खुद सहज एक ब्रह्मराक्षस है । मुक्तिबोध की कहानी 'ब्रह्मराक्षस' एक ऐसा कलाकार है जिसे केवल अभिव्यक्ति ही मुक्त कर सकती है ।'[1]

मुक्तिबोध अभिव्यक्ति को व्यापक सन्दर्भों में सार्थक मानते थे-- नयी कहानी पर बहस करते हुए वह लिखते हैं 'नयी कहानी में आधुनिक मानव (इसका मतलब चाहे जो लीजिए : प्रगतिवादी अर्थ मत लीजिए ) की जो विचित्र मनोदशा है इसको अगर आप इसके सारे सन्दर्भों से काटकर उसके सारे बाह्य सामाजिक पारिवारिक इत्यादि संबंधों से काटकर उस मनोदशा को मानो अधर में लटकाकर चित्रित करेंगे तो मनोदशा के नाम पर (कहानी में) एक धुन्ध समा जाएगा । कहानी में अगर सिर्फ भीतर धुन्ध समा जाएगा । कहानी में अगर सिर्फ भीतर धुन्ध हो और सिर्फ वही रहे और उसकी प्रधानता इतनी हो कि वस्तु सत्यों के संवेदनात्मक चित्रों का प्राय: लोप हो जाये तो आप वही गलती करेंगे जो कि (मेरे ख्याल से) नयी कविता ने की । कविता की कला कथा की कला से अधिक मूर्त तो वैसे ही होती है इसलिए सम्भवत: वे बातें खप भी जाती हैं किन्तु कहानी में नहीं ।'[2]

मुक्तिबोध की कहानियाँ दो तरह के संकट को पेश करती हैं -- एक बुद्धिजीवी का संकट और समूची (मानव सभ्यता का संकट।) बुद्धिजीवी के संकट को वह विषात्र में उभारते हैं जिसे श्रीकान्त वर्मा आचरण का संकट कहना ज्यादा सही मानते हैं । मानवता का संकट 'क्लॉड ईथरली' समूची सभ्यता को उसकी वीभत्स अवस्था में नंगाकर देता है ।' वह चाबुक की तरह जख्मी सी स्मृति छोड़ जाता है ।'[3]

---

1- काठ का सपना : भूमिका श्रीकान्तवर्मा : पृष्ठ-8

2- एक साहित्यिक की डायरी : विशिष्ट और द्वितीय :मुक्तिबोध: पृष्ठ- 108 ।

3- काठ का सपना : श्रीकान्त वर्मा : भूमिका : पृष्ठ-10

उनकी कहानियों में एक और विशेषता है सामाजिक संबंधों की फैली परख । ये कहानियां सहज ही हर स्थिति के अति सामान्य से असामान्य और अद्भुत का भरम पैदा कर देती है । उनकी कहानियां एक ऐसे घाव को, एक ऐसी पीड़ा को हमारे सामने उघाड़ कर रखती है जिसे हम देखकर अनदेखा और सुनकर अनसुना कर जाते हैं । उनकी कहानियों में अनेकायामी अर्थ छिपे रहते हैं । शमशेर के शब्दों में "ये कहानियां जीवन के ठोस नैतिक मूल्यों पर सोचने के लिए पाठक को विवश करती है ।"[1]

मुक्तिबोध का स्वयं का जीवन एक मुठभेड़ है और उनकी कहानियां भी उसी मुठभेड़ की एक अटूट प्रक्रिया है जिससे जूझकर वे स्वयं नष्ट हो गये ।

मुक्तिबोध की कहानियों की परिभाषा के सन्दर्भ में श्रीकान्त वर्मा ने लूकाच की चर्चा की है । जार्ज लूकाच ने टॉमसमान के उपन्यासों के लिए जिन्हें की वह बीसवीं सदी की प्रतिनिधि रचना मानते हैं । आलोचनात्मक बुर्जुआ यथार्थवाद (क्रिटिकल बुर्जुआ रियलिज़्म) विशेषण का इस्तेमाल किया था । श्रीकान्त वर्मा मुक्तिबोध की कहानी की परिभाषा के लिए इसे सबसे उपयुक्त शब्द मानते हैं उन्हें मुक्तिबोध की कहानियां काफ्का की जिसे जार्ज लूकाच ने "बुर्जुआ रियलिज़्म " बुर्जुआ यथार्थ कहकर व्याख्यात किया था की याद दिलाती है ।"[2]

जार्ज लूकाच की मान्यता थी कि इतिहास केवल अतीतबोध नहीं वह वर्तमान का भी एहसास और उसके प्रति एक दृष्टि है । यह बात मुक्तिबोध पर भी लागू होती है । इसी सन्दर्भ में जार्ज लूकाच ने बाल्जाक, डिकेन्स, थैकरे की आलोचना की थी : लेखक जब घटनाओं और आख्यानों को

---

1- सतह से उठता आदमी :शमशेर : पृष्ठ-3

2- श्रीकान्त वर्मा :भूमिका :सतह से उठता आदमी -पृष्ठ-5

इकट्ठा करते हैं, उनकी तह में नहीं जाते तब वह अपने समय का विवरण पेश करते हैं उसके अर्थ को नहीं पहचानते ।' आधुनिक कथा साहित्य और नयी कहानी के नाम पर हिन्दी में जो कुछ रचा गया उसका अधिकतर समसामयिकता का झूठा दावा है वह सतह पर ठहरी हुई एक दृष्टि है - उसके पीछे इतिहास बोध नहीं - लोगों के दृष्टिकोण के परिवर्तन का परिचय उसमें नहीं मिलता । वह अपने समय से मुठभेड़ नहीं बल्कि अखबार के उड़ते हुए पन्नों को इकट्ठा कर उन्हें इतिहास के नाम पर चलाने का पाखण्ड भरा प्रयत्न है ।'[1]

मुक्तिबोध की कहानियां हिन्दी के समकालीन कथा साहित्य को चुनौती है । डा० गंगाप्रसाद विमल के शब्दों में मुक्तिबोध मानव विरोधी कटघरे में पात्रों के रूप में स्वयं खड़े हैं और सीधे साधे बने बनाए व्यवस्था तंत्र के खिलाफ एक अकेली आवाज़ में चिल्लाते हैं पर उसका मतलब यह नहीं है कि एक निरर्थक शोर के बीच मुक्तिबोध की रचनाएं अकेली आवाज़ की चिल्लाहट भर हैं बल्कि वे शुद्धतया एक मानवीय संस्कृति के अग्रगामी दस्ते के संकेत हैं ।

मुक्तिबोध अपनी कहानियों में मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी और उससे बढ़कर मानवीय संकट के प्रश्नों से जूझ रहे थे--जिससे वह स्वयं भी अटपटा रहे थे । रहस्यों को खोलने पर उतारू मुक्तिबोध की कहानियों के सन्दर्भ में भी उनकी कविता की पंक्तियां खरी उतरती हैं ।

'प्रश्न थे गम्भीर, शायद खतरनाक भी
इसलिए बाहर के गुंजान
जंगलों से आती हुई हवा ने
फूंकमार कर एकाएक मशाल ही बुझा दी
कि मुझको यों अंधेरे में पकड़ कर
मौत की सज़ा दी ।'

---

1- श्रीकान्त वर्मा : सतह से उठता आदमी : पृष्ठ- 5

# तृतीय अध्याय

## मुक्तिबोध की कहानी–विकास यात्रा (1936 से 1964)

(क) आरम्भ, मध्य, उत्तर काल

(ख) जीवन दृष्टि, विश्व दृष्टि, वर्ग चेतना का विकास।

(ग) मुक्तिबोध की काव्य यात्रा : एक समानान्तर अध्ययन।

मुक्तिबोध की कहानियां 1936 से 1964 तक की लम्बी यात्रा तय करती हैं जिसमें प्रकाशित-अप्रकाशित , छोटी-बड़ी सभी तरह की कहानियां संकलित हैं । मूलत: कवि होने के बावजूद वे जीवन - अनुभव को कथा-मूलक बिम्बों में व्यक्त करते रहे । काव्यात्मक साधना के साथ कहानी लेखन की ओर उनकी प्रवृत्ति प्रारंभ से ही रही । हालांकि वे कहानी अपेक्षाकृत कम ही लिख पाये । स्वयं मुक्तिबोध ने इस बात को स्वीकार किया ।"कहानी लेखन आरम्भ करते ही मुझे अनुभव हुआ कि कथा तत्व मेरे उतना ही समीप है जितना काव्य परन्तु कहानियां मैं बहुत ही कम लिखता था अब भी कम लिखता हूं ।"[1]

मुक्तिबोध की कहानियों का प्रथम संग्रह "काठ का सपना " (प्रथम संस्करण -1967) है । इसमें ग्यारह कहानियां संग्रहित हैं । संग्रह के रूप में प्रकाशित होने से पूर्व "काठ का सपना " की सभी कहानियां पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकाश में आ चुकी थीं । आठ मुक्तिबोध के जीवनकाल में और तीन मरणोपरांत । प्रथम प्रकाशन की दृष्टि से "मोह और मरण" इस संग्रह की सबसे पुरानी कहानी है । यह "वीणा" के जनवरी अंक में पहली बार छपी थी ।"विपात्र " इस संग्रह की सबसे अंतिम कहानी है इसकी कल्पना मुक्तिबोध ने उपन्यास के रूप में की थी । किन्तु अन्त में इसे लम्बी कहानी के रूप में स्वीकार किया गया । जबकि 1970 में उपन्यास रूप में भी विपात्र प्रकाश में आया ।

दूसरा संग्रह : सतह से उठता आदमी " (प्रथम संस्करण-1976) में नौ कहानियां हैं । इस संग्रह की पांच कहानियां अपने संग्रहित रूप से पहले पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी थीं । प्रथम प्रकाशन की दृष्टि से आखेट इस

---

1- मुक्तिबोध का वक्तव्य :तार सप्तक : पृष्ठ- 6

संग्रह की सबसे पुरानी कहानी है । यह 'वीणा' के अक्टूबर 1938 के अंक में 'मानवी पशुता' नाम से पहली बार छपी थी । 'सतह से उठता आदमी' की कहानियों के शीर्षक मुक्तिबोध के दिये हुए नहीं हैं । वस्तुत: इस संग्रह की केवल आखेट कहानी ही मुक्तिबोध के जीवनकाल में प्रकाशित हो सकी थी । इन कहानियों के शीर्षक पत्रिकाओं के सम्पादक, संग्रह के प्रकाशक और मुक्तिबोध के ज्येष्ठ पुत्र रमेश मुक्तिबोध की पारस्परिकता का परिणाम है इस संग्रह की अधिकांश कहानियों को मुक्तिबोध अपेक्षित संस्कार भी नहीं दे पाए थे । जिस अस्त व्यस्त स्थिति में वे उपलब्ध हुई थीं उन्हें उसी रूप में संग्रहित कर लिया गया है ।

इन प्रकाशित कहानियों के अलावा भी मुक्तिबोध की अनेक कहानियां हैं जो 1980 में नेमिचन्द्र जैन द्वारा सम्पादित मुक्तिबोध रचनावली तीन में संकलित हैं जिसमें मुक्तिबोध की कथा-प्रकाशित -अप्रकाशित -पूर्ण अपूर्ण सभी कहानियों को सम्भावित रचना क्रम की दृष्टि से रखा गया है । प्रकाशित कहानियों के अलावा इनमें 3 पूर्ण तथा 16 अपूर्ण कहानियां (कहीं भी अप्रकाशित ) भी हैं । जिनमें 'खलील काका' और 'वह' आरम्भिक कहानियां हैं । इनका रचनाकाल 1936-37 है । तीसरी 'मैत्री की मांग' 1942 के बाद की लिखी गई है ऐसा सम्पादक का मत है ।

इन संकलनों में एक-दो कहानियां ऐसी भी हैं जिनमें किसी कारण (एक ही कागज पर लिखी होने के कारण या किसी अन्य वजह से दो अलग अलग कहानियां गडमड हो गई थीं । उदाहरणार्थ 'चाबुक' कहानी जिनमें दो स्पष्ट भिन्न कथाएं हैं और एक तरह से दोनों ही पूर्ण हैं । अत: 'चाबुक' शीर्षक से और दूसरा अंश उपसंहार शीर्षक से तुरन्त बाद ही दे दिया है ।

मुक्तिबोध ने कविताओं की ही तरह कहानियों को भी अनेकानेक बार लिखा है । इसलिए कई कहानियों के एक से अधिक प्रारूप मिलते हैं । कहीं-

कहीं पाण्डुलिपि में उपलब्ध पत्रिका में प्रकाशित और संकलन में प्रकाशित रूपों में भी अन्तर है । कुछ में अला-अलग प्रारूप कुछ सामान्य पात्रों,नामों स्थानों अथवा वर्णनों,वाक्यांशों को हस्तेपाल करते हुए भी अपने आप में स्वतंत्र कहानियाँ जैसे हैं या एक ही स्थिति को अला-अला बिन्दुओं से प्रकट करते हैं । एक दाखिल दफ्तर सांक "जैसी कहानियों का आगे का एक और किन्तु अपूर्ण हिस्सा भी उपलब्ध है जिससे उसके मूल चरित्र की मानसिकता पर अतिरिक्त प्रकाश पड़ता है । अत: मूल कहानी के बाद ही , पर अला से उसे भी दे दिया गया है । रचनावली में सभी कहानियां काल क्रम से प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है । कविताओं की भांति कुछ प्रारंभिक रचनाओं को छोड़कर सभी कहानियों में भी तारीख नहीं दी हुई थी अत: सम्पादक ने उनका निश्चित रचनाकाल निर्धारण में अनेक पद्धतियों का सहारा लिया गया है । इसमें इस बात का भी प्रयास किया गया कि मुक्तिबोध जैसे रचनाकार के बारे में(जिसका अधिकांश साहित्य मरणोपरांत प्रकाशित हुआ ) रचनाकाल का निर्धारण चाहे निश्चित तारीख अथवा वर्ष न भी हो सके तो भी एक विशेष काल खण्ड के भीतर रचना को रख सकना भी कम उपयोगी नहीं है । यदि रचना कहीं पूर्व प्रकाशित हुई हो तो उस पत्रिका के नाम तथा वर्ष मास आदि के आधार पर यह निर्धारित किया गया । उनकी रचनाएं अधिकांशत: दूतावासों से जारी किए गए सूचना "बुलेटिनों" की पीठ पर लिखी गई हैं । इन "बुलेटिनों" में अधिकांश पर तारीख दी गई है । अत: जहां निश्चित तारीख न मिल सकी वहां उनमें लिखी घटना को आधार बनाकर वर्ष का अनुमान लगाना सहज हुआ । अनके रचनाओं में उनके पुत्र रमेश मुक्तिबोध ने अपने पिता द्वारा व्यवहार में लाये गये कागजों अथवा उनके हस्तलेख में होने वाले परिवर्तनों के आधार पर भी सम्भावित रचना-काल सुझाया । कुछ रचनाएं एक लम्बे दौर में लिखी गई हैं उनका रचना काल आठ - दस वर्ष या इससे

भी अधिक में फैला है । इन रचनाओं के संबंध में यह निर्णय सम्पादक द्वारा लिया गया कि इनका वर्ष समाप्ति का वर्ष रखा जाए । अत: उसी के अन्तर्गत रखना उचित समझा गया ।

उनकी रचनाओं का कालक्रम उनकी कहानी की सृजनात्मक यात्रा को समझने में सहायक है । यही स्थिति अपूर्ण कहानियों की भी है । जो एक हद तक अपूर्ण होने के बाद भी किसी, स्थिति चरित्र या विचार का इतना प्रस्फुटन अवश्य है कि वे मुक्ति बोध की सूक्ष्म अवलोक की प्रवृत्ति अन्तर्दृष्टि अथवा वर्णन क्षमता को उद्घाटित करती हैं । साथ ही उनसे लेखक की रचनात्मक मानसिकता भी कुछ अधिक समग्रता से उभर कर आती है ।

रचनावली में संकलित कहानियों में "सलिल काका" सबसे प्रारंभिक कहानी ठहरती है (1936) यही उसका रचनाकाल है जो "वह" कहानी का भी है (1936-37) आकेट जी की वीणा, अक्टूबर 1938 में "मानवी पशुता" शीर्षक से प्रकाशित हुई थी, "मोह और मरण (वीणा जनवरी 1940 में प्रकाशित) मैत्री की मांग (रचना काल-1942-47) "एक दाखिल दफ्तर सांझ" (सम्भावित रचनाकाल 1948-1958 साप्ताहिक हिन्दुस्तान के नवम्बेर 1968 में प्रकाशित) जिन्दगी की कतरन (1948-58 के बीच) अंधेरे में (48-58) चाबुक (1950) नयी जिन्दगी" (प्रवाह, मार्च 1953 में प्रकाशित) प्रश्न" (1956 में प्रकाशित) "ब्रह्म राक्षस का शिष्य" (नया खून -21 जून 1957 में प्रकाशित) भूत का उपचार (1957-कल्पना अगस्त 1968 में प्रकाशित) समझौता (1959 के बाद "नई कहानी" अगस्त 1967 में प्रकाशित ) पक्षी और दीमक" (1959-1963 कल्पना दिसम्बर 1963 में प्रकाशित) क्लाड ईथरली" (1959 के बाद लगभग 1960 के आस-पास धर्मयुग अप्रेल 1968 में प्रकाशित "विद्रूप" एक लम्बी कहानी का अंश 1963-1964) सतह से उठता आदमी" (1963-64) जंक्शन (1963-64) विपात्र (1963-64) इस प्रकार उनकी चौदह पूर्ण कहानियां हैं जो 1936 से 1964 तक के लम्बे सफ़र को तय करती हैं ।

अधूरी कहानियाँ में सात अपूर्ण कहानियों को अधूरी कहानी 1-7 शीर्षक में रखा गया है जिनका कालक्रम इस प्रकार है 'अधूरी कहानी -एक' (1936-40) अधूरी कहानी दो (1944-45) अधूरी कहानी तीन (1948) अधूरी कहानी चार (1950-51 के आसपास) अधूरी कहानी पांच (1950-51) अधूरी कहानी छः (1957-58) अधूरी कहानी सात (रचनाकाल अनिश्चित)।

इसके अतिरिक्त अपूर्ण कहानियों में से कुछ के शीर्षक स्वयं मुक्तिबोध के दिये हुए हैं तथा कुछ के सम्पादक द्वारा दिये गये हैं यथा एक लम्बी कहानी (1941-43) इस कहानी के बीच का भी कुछ अंश अप्राप्य है। बाबू रामचन्द्र अग्रवाल (1950-51) नाग नदी के किनारे (1955-56) भटनागर (1957) तिलिस्म 1957-58) ना घर तेरा ना घर मेरा चिड़िया रैन बसेरा (1962) बड़ी सड़क (1963-64), मेरा मित्र (रचनाकाल अनिश्चित) महापुरुष (अनिश्चित)।

इन कहानियों के अतिरिक्त उन्होंने एक उपन्यास भी लिखा था जिसका एक अंश तो पक्षधर में प्रकाशित हुआ(1975-76) जोकि अधूरा और खण्डित है। वह भी इनकी कहानी की विकास यात्रा को समझने में सहायक होगा 1948 के आस-पास उन्होंने 200 पेज का यह उपन्यास लिखा था जो इलाहाबाद के एक प्रकाशक को दिया गया था। उसके उस समय लगभग 80 पृष्ठ कम्पोज हुए पर वह प्रकाशित या मुद्रित नहीं हो सका। दुर्भाग्यवश उसकी पाण्डुलिपि भी उपलब्ध न हो सकी।

मुक्तिबोध में लिखने की अद्भुत क्षमता थी। चाहे कविता हो या कहानी उनकी रचनात्मक सम्वेदना की जटिलता को प्रकट करती चलती है। समय के साथ-साथ वह सतह से तल की ओर पैठती जाती है। मुक्तिबोध की भावात्मक ऊर्जा अशेष और अटूट थी जैसेकोई नैसर्गिक अन्तःस्रोत हो जो

कभी चुकता ही नहीं बल्कि लातार अधिकाधिक वेग और तीव्रता के साथ उमड़ता चलता है । इस आवेग के बदवाव में वे लातार लिखते चले जाते थे और उनकी यह ऊर्जा अनेकानेक कल्पना चित्रों, फैंटेसियों का साकार ग्रहण कर लेती थी । इस कारण यह भी स्पष्ट नहीं होता था कि कोई रचना कब और कहां शुरू हुई और कैसे किस जाह समाप्त हुई । अपने अनुभव को किसी एक संयोजित निश्चित बिन्दु पर, अथवा दो बिन्दुओं के बीच फैलाकर रचना को समाप्त करना उनके लिए शायद कठिन होता था । इसलिए उनकी कविताओं में, यहां तक कि कहानियों और लेखों में भी बदलते हुए अनुभव, भाव, विचार या उनके अलग-अलग स्तरों के साथ बदलती हुई लय का, स्वर के उतार-चढ़ाव का या रूप गत विविधता तथा परिवर्तन का अहसास तो होता है, पर रचना के आदि या अन्त का अलग से आभास नहीं होता ।"[1]

मुक्तिबोध अपने संघर्षों में इतना तो कर पाये कि वह कविताएं और कहानियां लिखते रहे किन्तु अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी के संघर्षों में इतनी बेरहमी से गिरफ्तार रहे कि थोड़े से मौलिक तथा मार्मिक अवकाश के साथ अपनी रचनाओं को मांजने व्यवस्थित करने अथवा उनपर सावधानी से एक और नजर डालकर उन्हें अंतिम रूप देने का अवसर उन्हें कम ही मिला । ऐसा उन्होंने किया किन्तु ऐसी रचनाओं की संख्या अल्प ही है । यही कारण है कि उनकी रचना की अलग-अलग सतह है , अलग-अलग परते हैं ।

मुक्तिबोध की कहानी के विकास को सुविधा की दृष्टि से तीन काल में विभाजित किया जा सकता है आरंभिक कहानियां 1936 से 48 तक । मध्य 48-58 तक और उत्तरकाल 58 से 64 तक) ।

---

1- मुक्तिबोध रचनावली : एक भूमिका : नेमीचन्द्र जैन: पृष्ठ-14 ।

मुक्तिबोध की कहानियाँ आरम्भ से लेकर उत्तरकाल तक समान मूल्य की नहीं है न ही किसी एक चेतना का विकास है। उनके रचनाकाल की भिन्नता और कवि की अपनी वैचारिक समझ के विकास के साथ रचनाओं का विकास हुआ है। युग की समकालीनता में कहानियों के रचना कौशल में परिवर्तन आया है। मुक्तिबोध की प्रारंभिक कहानियाँ छोटी सीधी और सजीव है। कथाओं के माध्यम से साधारण निम्नमध्यवर्गीय श्रेणी के लोगों के प्रति सहानुभूति की ऊष्मा लिए हुए मानवी आत्मा की मूल पवित्रता तथा उदार शक्ति पर गौरवपूर्ण विश्वास को चित्रित करती है।"[1]

'खलील काका' कहानी बाप बेटे के रिश्ते को उसकी भीतरी तह पर उजागर करती है। खलील काका केशव को प्यार करते हैं रसूल को चाँटा मारते हैं। रसूल की आंख में आंसू हैं और 'खलील प्यार करता है केशव को रसूल से ज्यादा इसलिए कि उसे माता-पिता नहीं है अनाथ है, बच्चा है, कोमल है। जी हां रसूल को पिता है, वह बड़ा है, पांच साल का है खलील रसूल को डाटेगा, पुचकार नहीं करेगा।"[2] रसूल अब नहीं है, वह होटल में नौकरी करेगा। कमाकर लाएगा नहीं तो घर से निकाल दिया जाएगा।

खलील को आज रसूल याद आता है। "आज रात को खलील के इन आंसुओं ने उसकी अन्तर्धारा का परिचय करा दिया कि वह किसकी है ? पर खलील उस समय रसूल की आवश्यकता को न जान सका।"[3]

---

1- मुक्तिबोध का गद्य साहित्य-मौती राम वर्मा : पृष्ठ-43

2- मुक्तिबोध रचनावली:3 पृष्ठ-18

3- मुक्तिबोध रचनावली :3 पृष्ठ-18

'खलील को क्या मालूम था कि रसूल उस होटल में जाकर मर जाएगा नहीं तो वह जरूर चूम लेता प्यार कर लेता, छाती से चिपका लेता । वाह रे खलील ।'[1]

ये कहानी बच्चों के एक कोमल प्रश्न की चकाचौंध से एक बड़े प्रश्न पर हमला करती है । 'केशू ने रसूल के कान में जाकर कहा, खलील काका मेरे रसूल औंधे से सीधा लेट गया । उसकी ओर आंखें फाड़ फाड़ कर देखने लगा ।'[2]

'खलील काका किसके हैं ? इस प्रश्न पर उसने कभी विचार ही नहीं किया था । उनका संयमी विचार व्यथित, सहनशील व्यक्तित्व इस बात पर एकदम चमत्कृत हो गया । केशव के हैं या रसूल के खलील काका ? क्या वह खोजने निकल पड़े । एक गुप्त कराह उसकी धड़कनों में बिंध गई । उसका सारा बदन दुःखने लगा पर वह वैसे ही उठा और धाम में जाकर खड़ा हो गया ।'[3]

बचपन की यह तलाश, यह बेचैनी यह कराह, मुक्तिबोध के बुद्धिजीवी की विकास यात्रा का पहला पड़ाव है ।

'आखेट' का नायक है मुहोब्बत सिंह । इन मुहोब्बत सिंह को मुहब्बत कभी नसीब नहीं हुई । वह सीधा-साधा पुलिस का एक जवान था, मात्र अठारह बरस का, तब वह चोट खा चुका था । साम्प्रदायिकता उसमें नहीं थी । वह मुसलमान हैड कान्सटेबल की खूबसूरत लड़की के प्रति मन में कोई द्वेष नहीं रखता । प्यार असफल होकर भीतर की परतों में चला जाता है और वह भीतर से और उदार होता चला जाता है । वह रामसिंह

---

1- मुक्तिबोध रचनावली :3 पृष्ठ- 19 ।

2- -- वही -- ,, पृष्ठ-19

3- -- वही -- ,, पृष्ठ- 19 ।

के बेटे लक्ष्मण, भगवती के बेटे कालिया और इस्माइल के लड़के मकसूद को समान रूप से प्यार करता है। वह हेड कान्स्टेबल बन गया है अतः उन्हीं के मुताबिक कठोर व्यवहार करने लगा है। रौबदार मूंछों पर ताव दिया करता है। अपनी प्रतिष्ठा के प्रति वह बहुत चौकन्ना रहता है। सिनेमा के चलतू गीत गाता रहता था। आने जाने वालों का तुमुल कोलाहल उस तक नहीं पहुंचता। वह अपने में मग्न एक आंतरिक सुनसान प्रदेश में व्याप्त हो रहा था। ऐसे ही में एक दिन "एकाएक मानों वह अपनी ही नींद से जागा, बहुत दिनों में आज उसने समझा, कोई उसे पुकार रहा है उसने वहीं से आवाज़ दी "इधर सामने आओ।" और सामने आ खड़ी हुई एक भिखारिन जिसके बाल बिखरे हुए थे और जो एक चीथड़ा पहने थी, दीन और सकपकाई हुई। वह भूली है किन्तु मुहोब्बत सिंह को उसकी नहीं अपनी भूल याद आती है। उसे अपनी प्रतिष्ठा का भी ख्याल आता है। "पाप के समय भी मनुष्य का ध्यान इज्जत की तरफ रहता है। वह पाप करते समय पाप से नहीं डरता पाप के खुलने से डरता है। वह डर गया कि कहीं कोई आ न जाए, पर वह घबराया नहीं और अपने ही घर में चोर बनकर हल्के पैर धीरे से किवाड़ बन्द कर दिये तथा सांकल लगा दी। दिया न मालूम क्यों अपने आप ही बुझ गया। अन्धेरे में क्या हुआ करता है? पाप"।[1] किन्तु तभी उसे अपनी मां की याद आती है। "पाप से बचकर मुहोब्बत सिंह का तूफान शांत हो गया। उसने उस स्त्री की भूल को पहचाना।" वह स्त्री भूख की सताई हुई थी, जिसके मां-बाप, भाई-बहन लापता, न रहने का स्थान, न पहनने को कुछ सारे शहर में पैसे के लिए घूमने पर पेट की ज्वाला से व्याकुल और निराश होकर, इस दरवाजे पर ठहर गयी थी और आवाज़ दी थी।"[2]

---

1- मुक्तिबोध रचनावली :3 आखेट : पृष्ठ- 33

2- -- वही -- ,, पृष्ठ- 33

स्त्री सचेत होती है 'व्यक्तित्व ही के लिए समाज और नैतिकता होती है। भूखे और समाज की आर्थिक नीति से बुरी तरह कुचले हुए समाज से बाहर समझे जाते हैं। केवल किसी प्रकार उदर भरण तक बन सके, करते रहना ही इनकी इच्छा आकांक्षा और ममता थी वह कितनी सुखी थी।[1]

मुहोब्बत सिंह ने मानो अब पहचाना कि वह किसलिए आई थी और हाय रे उसने क्या कर डाला [illegible] अहसास है, ममता है, किन्तु एक संकट उसे चारों ओर से घेर लेता है 'एक हेड कांस्टेबिल पुलिस अपने घर भिखारिन रख ले। यह गैर मुमकिन बात है।'[2] उसके भीतर बाहर द्वन्द्व चलता है। उसके भीतर लहै माँग (उठती है) और तब पुराना रंग फिर मुहोब्बत सिंह की आँखों में घुलने लगा और उसे मालूम हुआ या भ्रम हुआ, मानो वही, उसकी प्यारी, कोमल हाथों से रोज सुबह उठकर फूल तोड़ने वाली बालिका साक्षात् खड़ी है। मानो उस बालिका का पूरा स्नेह सौन्दर्य एकत्र होकर सामने वाली स्त्री में उसे देख रहा है। उस स्त्री में वह उसी बालिका के अलौकिक रूप का प्रत्यक्ष दर्शन करने लगा।'[3] और अन्त में 'मनुष्य में स्थित जिस पुराने पशु ने उस स्त्री को चौकी के अन्दर पैर रखते हुए अपना आखेट बना लिया था, उसी मनुष्य के भीतर बैठे हुए देवता ने मानो अपने आचरण से अनाथिनी को सनाथिनी बना दिया था।'[4]

'मोह और मरण' कहानी का वृद्ध अपने भरण पोषण के लिए झूठ बोलता है, लालच करता है। इसी बात को लेकर उसके बेटे की बहू अपनी घृणा व्यक्त करती है 'तुम्हें बुढ़ापे में भी लालच नहीं छूटा।'[5] किन्तु वृद्ध की अपनी

---

1- मुक्तिबोध रचनावली: 3 आखेट पृष्ठ-33

2- -- वही -- ,, पृष्ठ-33

3- -- वही -- ,, पृष्ठ-36

4- -- वही -- ,, पृष्ठ-36

5- -- वही -- ,, पृष्ठ- 36

दृष्टि है वह अपने कर्म की विवशता का जामा पहना कर समाधान ढूंढ लेता है "लालच उसने अपने लिए नहीं किया, उसने शरीर और मन कुटुम्ब के लिए दिया था।"[1] अत: यह कहानी साधारण श्रेणी के लोगों की पारिवारिक विवशता पर सहानुभूति का ऐसा आवरण डालती है जो अति सामान्य है इसमें कोई नयापन नहीं है। "यह प्रारंभिक कहानियां यथार्थ के कटु संस्पर्श से भी प्राय: वंचित है। मानवी सुख दु:ख के चित्रण में सुकुमारता का भाव ही वहां प्रधान रूप से विद्यमान रहा है।"[2]

"प्रश्न" "दो चेहरे" आदि कुछ अधूरी कहानियां भी जो इस दौरान लिखी गई हैं उनमें मुक्तिबोध की उलझी, गुम्फित, गतिशील सम्वेदना का अभाव स्पष्ट लक्षित किया जा सकता है। 1942 के बाद की कहानियों में कहानी का तापमान बढ़ता गया है। वह भीतर से गरम होता चलता है। और सतह पर फैलता है, आत्मसंघर्ष की तीव्रता जैसे-जैसे बढ़ती जाती है यथार्थ चित्रण का स्वरूप भी परिवर्तित होता चलता है उनकी कहानियों में मुक्तिबोध का समावेश उनके संघर्ष का परिणाम है।

परिवर्तन की इस प्रक्रिया में "मोह और मरण" की बहू की कुरूप घृणा, अन्धेरे में कहानी के युवक में कठोर बन कर प्रकट हुई है। दुनिया की कोई ऐसी कलुषता नहीं थी जिस पर उसे उलटी हो जाए। सिवाय विस्तृत सामाजिक शोषणों और उनसे उत्पन्न दंगों और आदर्शवाद के नाम पर किये गये अन्ध अत्याचारों यांत्रिक नैतिकताओं और आध्यात्मिक अहंताओं की तानाशाही को छोड़कर[3]। यह परिवर्तित दृष्टिकोण

---

1- मुक्तिबोध रचनावली :3 पृष्ठ-36 आखेट।

2- मुक्तिबोध का गद्य साहित्य -मोतीराम वर्मा : पृष्ठ-45

3- काठ का सपना : पृष्ठ- 93

मुक्तिबोध की प्रौढ़ मानसिकता का द्योतक है । मार्क्सवाद के प्रभाव में अपनी पैनी दृष्टि से कटे भीतरी यथार्थ की इस कहानी की परिवेशगत विशिष्ट मंदगति ही से सही परन्तु अपने समकालीन जीवन की विसंगति कटुता लड़ाई के दिन, साम्प्रदायिक हवा, बेकारी और भ्रष्टाचार के दृश्य बंगाल का अकाल और उनके परिप्रेक्ष्य में विवेक भावना की अनिश्चयात्मक स्थिति को यथार्थ रूप प्रदान करने में पूर्णत: समर्थ है ।

'ब्रह्मराक्षस का शिष्य' कहानी यद्यपि बच्चों की पत्रिका में प्रकाशित हुई किन्तु फिर भी वह किसी भी बुद्धिजीवी की अभिशप्त अवस्था का चित्रण करती है । वह बुद्धिजीवी जो जीवन से कटा हुआ अकेला और अभिशप्त है इसीलिए वह अगर कुछ कर सकता है तो वह यह कि वह इस अभिशप्त जिंदगी से अपने को मुक्ति दिला सकता है । मुक्तिबोध की यह बेचैनी जो अभिव्यक्ति के अभाव में पनपती है और मर्मान्तक होती जाती है । उसी की कहानी है 'ब्रह्मराक्षस का शिष्य' ।

'नयी जिन्दगी' के रमेश की सफलताओं असफलताओं का अपना इतिहास है । इस कहानी की कठोरता कथावाचक प्रारंभ में ही प्रकट कर देता है । बातें करके परिस्थिति नहीं सुधरा करती । सुपे में नहीं बना करती'[1] परिवार से टूट कर जीने, फिर भी उससे अटूट रूप से जुड़े रहने की मजबूरी के कारण वह दुविधा पूर्ण स्थिति में जीता है । दो भिन्न वातावरणों को झेलता है । एक वह जो उसके मन में है, दूसरा वह जो उसके घर में है । हालांकि कहानी का उपसंहार भीतरी और बाहरी जिन्दगी की

---

1- सतह से उठता आदमी : पृष्ठ- 66

असफलता आदि सामंजस्य के अभाव से उत्पन्न कड़वाहट के अनुरूप नहीं है फिर कहानी में बदलता कौशल द्रष्टव्य है ।

'काठ का सपना' मध्यवर्गीय जिन्दगी की घुटन के अनेक डायमेन्शन्स से स्नैप खींचती चलती है । पारिवारिक दुरावस्था के प्रति अपना कर्तव्य न निभा पाने वाले गृहस्थ की स्थिति से लेखक को एक सहानुभूति है । वह उनके उस अलगाव को पहचानता है जो भीतरी है समाज और व्यक्ति की भीतरी असंगति के बहुविध दरारें और दोनों के तीव्र सम्वेदनात्मक प्रतिघात को फेलने वाला व्यक्ति यदि स्वयं का संतुलन तथा समझौता नहीं साध पाता है तो अन्त: उसे भावकाल्पनिक सी आत्म-संगति को लेकर गुजर करनी पड़ती है यह उसकी नियति या विवशता है ।

'जलना' कहानी भी सामंजस्य -असामंजस्य को उपस्थित करती है जिसकी पार्श्वभूमि में नितांत पारिवारिक विवशता का आधार है सम्मिलित परिवार के गरीब मध्यवर्गीय स्थिति प्रयोग को सही परिप्रेक्ष्य में उनके वस्तु सत्यों के सम्वेदनात्मक ताने बाने सहित इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि न केवल विशिष्ट है वरन् वह अपनी श्रेणी की घरेलू ज़िंदगी के संताप का प्रतिनिधित्व भी करता है ।

'भूत का उपचार' कहानी का पात्र बाह्य यथार्थ पक्ष को महत्वपूर्ण नहीं मानता वह गरीब है वह उनका अहं दया का आकांक्षी कभी भी नहीं है । मैं इस बात का विरोध करता हूं कि आप निम्न मध्यवर्गीय कहकर मुझे जलील करें, मेरे फटेहाल कपड़ों की तरफ जान-बूझकर लोगों का ध्यान इस उद्देश्य से खिंचाएं कि वे मुझ पर दया करें । उन सालों की ऐसी की तैसी ।'[1]

---

1- सतह से उठता आदमी : पृष्ठ- 96 ।

'जंक्शन' कहानी में भी यही आभास और तीव्र हो उठा है "मैं अपने भीतर नंगा हो जाता हूं और अपने नंगेपन को ढकने की भी कोशिश नहीं करता।"[1]

जंक्शन का मैं मनहूस प्लेटफार्म पर टहलता हुआ अपनी नियति के प्रति अधिक सचेत है मांग कर पहने ओवरकोट के कारण वह उस प्लेटफार्म पर महत्वपूर्ण और शानदार हो उठता है हालांकि घर में बच्चों के पास ओढ़ने को रजाई का भी अभाव है। यहां उभरा व्यंग्य बहुत तीखा और कड़वा है विचित्र समस्या है। खुद ही अकेले में अपने को अकेले ही शानदार समझते रहो।"[2]

'मुक्तिबोध की कहानियों की सबसे प्रौढ़ रचनाएं हैं 'पक्षी और दीमक' 'क्लॉड ईथरली' और 'विपात्र' यह कहानियां मुक्तिबोध की विशिष्टता को उजागर करती हैं।

'पक्षी और दीमक' की अनेक सतह हैं जो मध्यवर्गीय जीवन के व्यापक सन्दर्भों और उनकी दुःखद अन्तों की कहानी कहती है। प्रभाव, भय और भ्रष्टाचार की सत्ता को सही परिप्रेक्ष्य में उजागर करती हैं "साथ ही उसके व्यक्ति की प्रबुद्धता को उदात्त स्तरीय निष्कर्ष तक पहुंचाती है। यह कहानी अपने प्रतीकात्मक रूप में छोटे-छोटे ठोस दृश्यों - स्फुट कथनों और व्यंग्य भरे वाक्यों को समाहित किए हुए, अपनी संवेदना को निरन्तर केन्द्रीय बिन्दु की ओर अग्रसर करती हुई कलात्मक अनुभव को समृद्ध आयाम प्रदान करती है।"[3]

'क्लॉड ईथरली' कहानी में बाहर झांकती हुई आंखें क्लॉड ईथरली की है जो भीतर है। उसका इतिहास कुछ भी हो मुक्तिबोध

---

1- काठ का सपना : पृष्ठ- 47

2- -- वही -- ,, पृष्ठ-47

3- मुक्तिबोध का गद्य साहित्य : मोतीराम वर्मा : पृष्ठ- 54

कलाकार की हैसियत से सच्चा कलाकार का दायित्व निभाते हैं। कौन है यह क्लॉड इंथरली/वह अमरीकी विमान चालक जिसने हिरोशिमा पर बम गिराया था। किन्तु मुक्तिबोध ने यहीं तक उसका परिचय सीमित नहीं किया वह तो उसे व्यापक कर देते हैं।

"क्लॉड इंथरली" अणु युद्ध का विरोध करने वाली आत्मा की आवाज़ का दूसरा नाम है वह मानसिक रोगी नहीं आध्यात्मिक अशांति का, आध्यात्मिक उद्विग्नता का ज्वलन्त प्रतीक है।"[1]

"विपात्र" हमारी संस्कृति और आत्मा के संकट का प्रश्न उठाती है। कथानक सपाट है किन्तु उसके "अण्डरग्राउन्ट" बहने वाली धारा बहुत उबड़-खाबड़ है। विपात्र की वैचारिक संरचना भारत के वर्तमान संस्कृति का संकट को व्यवस्थाविरोधीय प्रभुत्व और शिक्षित मध्यवर्ग की प्रबुद्धता विवशता तथा पुंसत्वहीनता के मानो सामाजिक परिप्रेक्ष्य में एक ऐसा अर्थखोजने की समस्या पर आधारित है जो जीवन को सही तरह जीने के योग्य बना सके। इसमें बुद्धिजीवी वर्ग अपने समग्र सामाजिक परिवेश में विपात्र की भूमिका निभा रहा है। विपात्र होने की नियति भुगत रहा है। इस मध्यवर्ग में गत्यात्मकता का अभाव है। जड़ीभूत जीवन प्रणाली के मोह ने झूठी सामाजिक प्रतिष्ठा के चक्कर ने, गतिहीन स्थिति ने जो आदमी और आदमी के बीच फासले बनाने का काम किया है। यह कहानी मुक्तिबोध के जीवन दर्शन से उपजे प्रश्नों को उभारती है।

मुक्तिबोध की कहानी की विकास यात्रा जीवन के अनेक सन्दर्भों के विविध आयाम अपने में समेटे मुक्तिबोध की जीवन यात्रा के अन्त तक चलती है। प्रारंभिक कहानी से लेकर प्रौढ़तम रचना तक मुक्तिबोध की विशिष्टता

---

1- काठ का सपना : पृष्ठ- 6

कहानी में निरंतर उद्भासित होती है। अधूरी कहानियां भी अपने अंशों में पूर्ण हैं और पूर्ण कहानियां अपने विशिष्ट संदर्भ में अपूर्ण।

इस प्रकार मुक्तिबोध की कहानी की विकास यात्रा सपाट मैदानों से शुरू होकर बीहड़ कैक्टसों से भरे रास्ते से बढ़ती जाती है जिसका पड़ाव कहीं-कहीं है, जो कहीं न खत्म होने वाली अन्तहीन यात्रा भी है।

---00000---

## मुक्तिबोध की जीवन-दृष्टि-वर्गचेतना का विकास, मान्यताएं

मुक्तिबोध मार्क्सवाद से प्रभावित थे और साहित्य के संबंध में की गई समीक्षा भी यही प्रमाणित करती है कि जीवन और समाज के प्रति उनका दृष्टिकोण मार्क्सवादी था। व्यक्तित्व की विशिष्टता को भी वे समाज प्रदत्त मानते थे। "हमारी आत्मा में जो कुछ है वह समाज प्रदत्त है... हमारा सामाजिक व्यक्तित्व ही हमारी आत्मा है।"[1]

मुक्तिबोध उन थोड़े से लेखकों में से थे जो भारतीय श्रमजीवी, मध्यवर्गीय जनता के संघर्षों की रचनात्मक सांस्कृतिक गतिविधि में रचनात्मक रीति से भाग ले रहे थे किसी भी और सिद्धान्त को न अपनाकर मार्क्सवाद से प्रभावित हुए। उन्होंने मार्क्सवादी जीवन दर्शन अपनाया लेकिन विवेकपूर्ण, पूरी तरह समझ कर पढ़कर और इसी से उसको अधिक वैज्ञानिक अधिक मूर्त और अधिक तेजस्वी दृष्टिकोण प्राप्त हुआ।"[2]

इसी जीवन दर्शन से उन्होंने अपने को सभी दिशा में विस्तृत किया, आधुनिक सम्वेदनाओं का ग्रहण और नव भावबोध व्यक्त करने की सामर्थ्य प्राप्त की। नये साहित्य के सौन्दर्य शास्त्र में उन्होंने लिखा "मार्क्सवाद मनुष्य को कृत्रिम रूप से बौद्धिक नहीं बनाता वरन् उसे ज्ञानालोकित आदर्श प्रदान करता है। मार्क्सवाद मनुष्य की अनुभूति को ज्ञानात्मक आदर्श प्रदान करता है। वह उसकी अनुभूति को बाधित नहीं करता वरन् बोध युक्त करते हुए उसे अधिक परिष्कृत और उच्चतर स्थिति में ला देता है संक्षेप में मार्क्सवाद का मनुष्य की सवेदना क्षमता से कोई विरोध नहीं है न

---

1- नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध : द्वितीय सं० 1977, पृष्ठ-57-58

2- राष्ट्रवाणी: युग जीवन का एक ज्वलन्त साहित्यिक दस्तावेज़ एक साहित्यिक की डायरी : शिवकुमार मिश्र पृष्ठ-319।

हो सकता है ।"[1] मार्क्सवाद का मुक्तिबोध ने गहन अध्ययन किया और जीवन और जगत संबंधी धारणाओं को निर्धारित और व्यापकता के प्रत्यक्षीकरण होने के साथ-साथ मार्गदर्शन से उपजी-वैचारिक जकड़न ढीली होती गई ।" उनकी दृष्टि इस दर्शन की रूढ़िगतता और सीमा को पहचान पाने में उत्तरोत्तर सक्षम हुई । इस पहचान के बाद वे इस दर्शन के प्रभाव बिम्ब से बाहर आने की बराबर कोशिश करते रहे । इस कोशिश में वे कुछ हदतक सफल हुए भी, पर मार्क्सवाद के सिद्धान्तों और विचारों ने उनके दिल दिमाग में जो कन्डीशनिंग पैदा कर दी थी --उनकी जड़े बहुत गहरी थीं और जूझने के बावजूद वे उससे उबर न पाये थे । उन्होंने सही मायने में खुद से लड़ाई की थी -आत्म संघर्ष किया था । इस आत्मसंघर्ष ने उन्होंने समूचे व्यक्तित्व को शोधने की दिशा में प्रवृत्त किया । इस शोधन प्रक्रिया के परिणामस्वरूप उनकी मानवीय सामाजिक दृष्टि का संस्कार हो सका था वे अपेक्षा अधिक व्यापक सहज और साहित्यिक सन्दर्भों में सार्थक हो सकी ।"[2]

जीवन की समस्याओं से जूझकर तथा उसका बौद्धिक विश्लेषण करके ही उन्होंने निष्कर्ष निकाले थे । व्यक्तिगत जीवन और सत्य के माध्यम से सम्पूर्ण जीवन सत्य के साक्षात्कार की प्रक्रिया में ही वे महत्त्वपूर्ण निष्कर्षों तक पहुंच सके थे । किन्तु कहीं भी आग्रही और अतिवादी वे नहीं बन सके ।" नई पीढ़ी, नये सृजन तथा हर नई संभावना के प्रति मुक्तिबोध अत्याधिक सम्वेदनशील थे । साथ ही पुरानी-सड़ी-गली जर्जर मान्यताओं के वे उतने ही बड़े शत्रु फिर भी नयेपन के इस मोह तथा प्राचीन के प्रति इस वितृष्णा ने उन्हें अतिवादी छोरों पर नहीं पहुंचाया ।"[3]

---

1- नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र-मुक्तिबोध पृष्ठ-104

2- मुक्तिबोध जीवन और काव्य:डा० महेश मटनागर :पृष्ठ- 26

3- --वही-- ,, ,, पृष्ठ-27

मुक्तिबोध ने परम्परा कीअदगुण धारा को उपेक्षणीय नहीं मानका। इस विकसित प्रक्रिया की अंतिम-वस्तु ही आधुनिक हो ऐसा उन्होंने नहीं माना। युग सन्दर्भ में जो भी सार्थक और रचनात्मक था वही उन्होंने आधुनिक कहकर स्वीकार किया। परम्परा और आधुनिक बोध दोनों को उन्होंने उनकी जीवन्त सक्रियता के आधार पर मान्यता दी। परम्परा को जकड़ने वाली रोगी जड़ों को उन्होंने दबाया। "मेरा अपना विचार है कि जिस भ्रष्टाचार अवसरवादिता और अनाचार से हमारा साहित्य व्यथित है उसका सूत्रपात बुजुर्गों ने किया। स्वाधीनता प्राप्ति के उपरान्त भारत में दिल्ली से लेकर प्रांतीय राजधानियों तक भ्रष्टाचार और अवसरवादिता के जो दृश्य दिखाई दिए उनमें बुजुर्गों का बहुत बड़ा हाथ है। अगर हमारे बुजुर्गों पर नये तरुणों की श्रद्धा नहीं रही तो उसका कारण यह नहीं है कि वे अनावस्थावादी है, वरन् यह कि हमारे बुजुर्ग श्रद्धास्पद नहीं रहे।[1]

तथाकथित नयी लाल बोड़ने वालों को भी मुक्तिबोध ने मूल्यहीन घोषित कर दिया। "जो पुराना है अब वह लौटकर नहीं आ सकता लेकिन नये ने पुराने का स्थान नहीं लिया। धर्म भावना गई लेकिन वैज्ञानिक बुद्धि नहीं आई। धर्म ने हमारे जीवन में प्रत्येक पक्ष को अनुशासित किया था। वैज्ञानिक मानवीय दृष्टि ने धर्म का स्थान नहीं लिया। इसलिए हमकेवल अपनी अन्तः प्रवृत्तियों के मंत्र से चालित हो उठे। उस व्यापक उच्चतर सर्वतोन्मुखी मानवीय, अनुशासन की हार्दिक सिद्धि के बिना हम "नया नया चिल्ला उठे, लेकिन वह नया क्या है - हम नहीं जान सके क्यों? नयाजीवन, नये मान मूल्य, नया ईमान परिमाणहीन और निराकार हो गये, वे दृढ़ और व्यापक मानविक सत्ता के अनुशासन का रूप धारण कर न सके।"[2]

---

1- एक साहित्यिक की डायरी : रचनावली छः पृष्ठ-86

2- -- वही -- ,, ,, पृष्ठ- 86

नये का शोर-विद्रोह की दुहाई मुक्तिबोध ने नहीं दी, वरन् जहां कहीं भी यह ऊपरी था वहां उसे बेरहमी से चीरकर उसकी भग्न विद्रूपताओं को उजागर किया था। कविता के सन्दर्भ में नयी कविता को उन्होंने तत्व रूप में आकारहीन, नये के सिर्फ डिज़ाइन की खोज हुई। नयी कविता, नये डिज़ाईन की कविता है। उन्होंने कोरे विद्रोही को फटकारा, विद्रोह को सही दिशा में ले जाने के लिए, उसे सार्थक बनाने के लिए। "नयी कविता उनकी अपनी जो मिसफिट है जो न आत्मसामंजस्य स्थापित कर सकते हैं न बाह्य सामंजस्य। आत्मसामंजस्य और असंतुलन से ही नयी कविता का जन्म हुआ है और उसका तथाकथित जो विद्रोह है, वह भी व्यक्ति आधारित है, इसलिए वह भी गोबी के रेगिस्तान में किसी अजानी खारी नमकीन झील में जाकर खुदकशी कर लेगा।"[1] कविता ही नहीं कहानी के सन्दर्भ में भी उनके विचार स्पष्ट है "अगर नयी कहानी का मतलब पानी के भीतर घुस कर, उसमें डूबकर फिर आंखें खोलकर देखना है तो मैं बताऊं कि ज्यादा से ज्यादा एक धुंध दिखाई देगी और आंखों को तकलीफ होगी ही। वे देख भी न सकेंगी। हां देख चुकने का स्वांग भले ही करें। नयी कहानी के मतलब को नये ढंग की धुंध से अलग किया जाए।"[2] मुक्तिबोध की यह मान्यताएं सहज उपदेशक बनने के उद्देश्य से नहीं की --उनकी अपनी जीवन दृष्टि के ही यह परिणाम है। "मुक्तिबोध ने सृजनात्मक साहित्य को कला का एक रूप माना और साहित्य विवेक को मूलतः जीवन विवेक।"[3] कला जीवन तत्वों द्वारा अनुशासित है --ऐसे जीवन तत्व जिनका एक सूत्र यदि बह्यांतर है तो दूसरा वास्तविक जीवन जगत्।"[4]

---

1- एक साहित्यिक की डायरी : पृष्ठ-107

2- -- वही -- ,, पृष्ठ-107

3-

4- नयी कविता का आत्म संघर्ष : पृष्ठ-2

जीवन की व्याख्या को वे उसकी सम्पूर्ण अवस्था में ही सार्थक मानते हैं "जीवन में हर पहलू दूसरे पक्ष का अविच्छिन्न अंग है वे परस्पर समाविष्ट हैं, वे परस्पर प्रविष्ट हैं । हम वैचारिक सुविधा की दृष्टि से उन्हें अलग करके देखते हैं ।[1] इसी वैचारिक सुविधा की दृष्टि से मुक्तिबोध ने जीवन को त्रिकोणात्मक माना है, जिसकी एक भुजा बाह्य जगत है दूसरी भुजा है हमारा अन्तःकरण और आधार रेखा है हमारी-चेतना[2] । यह चेतना इन दो भुजाओं के बिना अपना स्वरूप और आकार निर्मित नहीं कर सकती । जीवन स्वभावतः त्रिकोणात्मक होने के कारण उसकी व्याख्या किसी भी एक भुजा की उपेक्षा करके पूरी नहीं की जा सकती । न केवल वह अधूरी रहेगी वरन् विकृत और एकांगी भी ।"[3]

मानव जीवन का वैचारिक अध्ययन स्वानुभूत जीवन की कल्पना की पुनर्रचना है । जो सम्पूर्ण सामाजिक संगति में ही संभव है । समाज रेत का वह ढेर नहीं जिसमें का प्रत्येक कण, एक दूसरे से घनिष्ठ सम्पर्क रखते हुए भी -- एक दूसरे से भिन्न और स्वतंत्र रहता है , समाज एक वृक्ष की भांति है । जिसका प्रत्येक भाग प्रत्येक अंश, प्रत्येक कण और प्रत्येक बिन्दु एक दूसरे से अपने पूर्ण अखण्ड से आवयविक संबंध रखता है ।"[4]

✓ व्यक्ति अपनी चेतना के आधार पर सामाजिक जीवन का आभ्यांतरीकरण करता है । मनोमय जीवन में बाह्य की सामग्री है, बाह्य के तत्व है तो क्या अन्तर के तत्व हैं ही नहीं ? अवश्य है । लेकिन वस्तुतः

---

1- एक साहित्यिक की डायरी : पृष्ठ-126

2- कामायनी एक पुनर्विचार : पृष्ठ- 1

3- कामायनी : एक पुनर्विचार : पृष्ठ-2

4- -- वही -- ,, पृष्ठ- 2

वे उसकी आभ्यंतर शक्तियाँ हैं -सुवेदना, बोध शक्ति कल्पना और इच्छाएं ये उसकी अन्तर की चेतना के अंगभूत हैं तब वह प्रक्रिया शुरू होती है जिन्हें बाह्य का अभ्यंतरीकरण कहा है ।"[1] मुक्तिबोध की जीवन दृष्टि उन्हीं बाह्य के अभ्यांतरीकरण से विकसित है ।"वस्तुतः बाह्य जगत से सुवेदनात्मक तथा ज्ञानात्मक प्रतिक्रिया करके हमने विश्व का अभ्यांतरीकरण किया है और इसे आत्मजगत के द्वारा बाह्य-जगत को स्वानुकूल करने का प्रयत्न किया है । और इस बाह्य जगत से हमने विविध प्रकार के संबंध स्थापित किए हैं । इन सब क्रियाओं से हमने अपने अन्तःकरण में भाव पुंज बनाये हैं । इन भाव पुंजों में, जगत से हमारे संबंध उनके प्रति हमारी भाव दृष्टि तथा जीवन-मूल्य ये सब उन्हीं के रंग में डूबे हुए होने के कारण भले ही अलग अलग दिखाई न दे किन्तु वे जीवनानुभव, एक ही साथ वस्तु तथ्य भी है और सुवेदनात्मक तथा भावात्मक पुंज भी ।"[2]

"जीवन के अभ्यंतरीकरण प्रक्रिया में ही व्यक्ति अपनी जीवन दृष्टि और मूल्य दृष्टि को विकसित कर लेता है । वर्ग अथवा समाज की विश्व दृष्टि व्यक्तिगत धरातल पर नीजि दृष्टि बन जाती है । एक वर्ग के भीतर अपनी विशेष जीवन-यापन प्रणाली की आवश्यकताओं के अनुसार व्यक्ति अपने जीवन मूल्य बना लेता है । ऐसे जीवन मूल्य जो सामान्यतः उस श्रेणी में प्रचलित है -- न केवल मानव संबंध चेतना के भीतर प्रवेश कर उसके निजीत्व बन जाते हैं वरन् यह कि चेतना की प्रवृत्तियों का रूपायन भी वे नहीं करते हैं । उनकी रूपायन की मूल शक्ति उस वर्ग के अपने चरित्र तथा स्थिति में सन्निहित है ।"[3] इस प्रकार वर्ग चेतना के आधार पर रूपायित अपनी शक्ति-सीमाओं के अनुसार ही व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण आंतरिक

---

1- नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र : पृष्ठ- 150

2- -- वही -- ,, पृष्ठ-143

3- -- वही -- ,, पृष्ठ- 118

दृष्टियों का भी निर्माण करता है। मानव संबंधों की स्थिति स्वरूप तथा विकासावस्था के आधार पर तथा उनके अनुसार हमारी विश्वदृष्टि नैतिकता तथा जीवनमूल्य बनते हैं। यह विश्व दृष्टि और जीवन मूल्य हमारी अभिरुचि संस्कार, शिष्टता की मर्यादाएं तो बनाते ही हैं। साथ ही वे वस्तु या व्यक्ति के प्रति हमारे दृष्टिकोण का भी निर्माण करते हैं।"[1]

मुक्तिबोध कलाकार के लिए मुक्तिबोध कलाकार के लिए विश्व दृष्टि अनिवार्य मानते हैं "आज के बहुत कवियों के अन्तःकरण में जो बेचैनी : जो ग्लानि -जो अवसाद, जो विरक्ति है उसका एक कारण, एक ऐसी विश्व दृष्टि का अभाव है, जो उन्हें अभ्यांतर आत्मिक शक्ति और मनोबल प्रदान कर सके तथा उसकी पीड़ाग्रस्त आगतिकता को दूर कर सके।[2] अतः वह मानवता का उद्धार ध्येय को लेकर चलने वाले राजनीतिक संघर्ष से संबंध करना चाहते हैं ताकि जीवन दृष्टि और जीवन मूल्य का विकास हो सके। " दुःख कष्टग्रस्त मनुष्यता के मूर्तरूप वास्तविक उद्धार लक्ष्यों की उपलब्धि के लिए --चलने वाले सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक संघर्ष के सन्दर्भ से ही तथा उसमें योग देते हुए हम नैतिकता के मानदण्ड अपनी दिशा दृष्टि, अपने जीवन मूल्य तथा अपनी विश्वदृष्टि विकसित कर सकते हैं।

मुक्तिबोध की वर्ग चेतना उन्हें समाज के भीतरी पर्तो तक पहुंचा सकने वाली दृष्टि देती है। निम्न मध्यवर्गीय लेखक वर्ग के उच्चतर वर्गों की मनोवृत्तियों के दुष्प्रभाव से बचकर अपनी वर्गीय भूमिका निबाहने तथा जनता का पक्ष अपनाने की सलाह मुक्तिबोध देते हैं। "भारत की एकमात्र आशा उसकी जनता है। उच्चतर वर्ग दैहिक और नैतिक रूप से मृतवत हो गये हैं।[3]

---

1- नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र - पृष्ठ- 117

2- -- वही -- ,, पृष्ठ-53

3- एक साहित्यिक की डायरी : पृष्ठ- 37

मुक्तिबोध वर्ग चेतना से रहित साहित्य को धोखा मानते हैं। "यदि केवल साहित्य को ही कोई हमारे व्यक्तित्व का अनुमान करने बैठे तो धोखा खा जाएगा।"[1]

मुक्तिबोध की वर्ग चेतना, विश्वदृष्टि का विश्लेषण शोधार्थी का उद्देश्य नहीं है। तथापि उनकी कहानियों में निहित उनकी जीवन दृष्टि को समझने के लिए उनकी जीवन-जगत संबंधी विश्वदृष्टि तथा वर्ग चेतना का अध्ययन आवश्यक है।

## मुक्तिबोध की काव्ययात्रा : एक समानान्तर अध्ययन

मुक्तिबोध कहानी लेखक के रूप में न जाने जाकर मुख्यतः कवि ही प्रसिद्ध है। मूल रूप से कवि होने के कारण उनकी कहानियां भी उनकी कविताओं की पूरक ही प्रतीत होती है। एक ही शीर्षक से भी कई बार वे कविता और कहानी लिख जाते थे। इन कविताओं और कहानियों के विषय भी एक ही है सिर्फ माध्यम का फर्क है "मुक्तिबोध की कविताओं और कहानियों की दुनिया में बहुत ज्यादा फर्क नहीं है। फर्क है सिर्फ माध्यम भर का। कविताओं में बिम्बीकरण और प्रतीकीकरण छद्म के ज़रिए मुक्तिबोध ने जिस मूलता सच को सामने रखा है कहानियों में वही सच मध्यवर्गीय सामाजिकों की जीवनियों के बहाने अनावृत हुआ है।"[2]

मुक्तिबोध की प्रारंभिक कहानियां भी उसी काल में ची गई है जिस काल में मुक्तिबोध की प्रारंभिक कविताएं लिखी गई और कहानी भी उनकी जीवन यात्रा के अन्त तक कविता की भांति ही साथ रही हालांकि कविताओं की अपेक्षा कहानी मुक्तिबोध ने कम लिखीं। कविता में जैसे-जैसे

1- एक साहित्यिक की डायरी : पृष्ठ- 37

2- सतह से उठता आदमी : भूमिका : डा० गंगाप्रसाद विमल, पृ०-7-8

निखार और विशिष्टता आती गई उसी के समानान्तर कहानी भी अपने रचनात्मक स्तर पर गुम्फित और अधिक गहराती गई । "मुक्तिबोध की कहानियों का रचनाकाल बीस वर्षों में फैला हुआ है । इसलिए कहानियों के स्तर में फर्क है । जमाने के साथ कहानी का कौशल भी बदल गया है ।"[1]

उनकी कहानी में कविता होने की संभावना सदा ही लक्षित की जा सकती है । निर्मल वर्मा ने इसे लिरिकल गद्य की उपमा दी है "वे कवि थे किन्तु उनका गद्य - वे कहानियां हों या डायरी उनसे बहुत दूर है । जिसे हम काव्यात्मक या लिरिकल गद्य कहते हैं उलटे उसमें एक पठारसी कठोरता और पथरीलापन है । जिसे पढ़कर कोई कल्पना नहीं कर सकेगा कि वह एक ऐसे कवि का गद्य है जिसकी मूल संवेदना कविता में व्यक्त होती है । किन्तु वह कहानीकारों का गद्य भी नहीं है जिसमें पात्रों की नियति घटनाओं द्वारा उद्घाटित होती है - मुक्तिबोध की कहानियों में उद्घाटित कुछ भी नहीं होता । पहले वाक्य से अंतिम पूर्ण विराम तक सब कुछ सपाट निश्चित पूर्व निर्धारित जान पड़ता है । मध्यवर्ग की जिन्दगी सा जिसमें कुछ भी नहीं होता । पहले भी था जो हमेशा रहेगा । एक अनवरत अन्तहीन चक्कर में घूमता चक्र किन्तु यदि सब कुछ पूर्व निर्धारित है तो उम्मीद और इन्तजार किस बात का किस घटना के होने की तैयारी में उनकी कहानियां प्रतीक्षा करती जान पड़ती हैं, यह होने वाली घटना कोई और नहीं कविता है । कहानी में कविता होने की संभाव्य घटना । यह घटना कहानियों में होती नहीं । मुक्तिबोध का कवि एक अद्भुत कलात्मक संयम द्वारा उसे कहानी के भीतर स्थगित किए रहता है । किन्तु उसके विस्फोटक शब्द उसमें हमेशा मौजूद रहते हैं । मानो कविता का कोई "टाईम बम" कहीं कहानी के कथ्य में स्थल में दबा है । जिसके विस्फोट की प्रतीक्षा में पेड़ झाड़ियां चट्टानें सरोवर, तालाब अन्धेरी गलियां, बर्फ से जमें, स्तब्ध और सहमें खड़े रहते हैं । वे स्थिर बिना हिले-डुले खड़े रहते हैं और हम समझ नहीं पाते वे वहां क्यों हैं ।

---

1- काठ का सपना : भूमिका श्रीकान्त वर्मा : पृष्ठ- 5

क्योंकि वह इतने जीवन्त और प्राणवान् हैं कि हम उन्हें केवल कहानी की पृष्ठभूमि महज़ कथ्य का बैकग्राउण्ड कहकर अनदेखा नहीं कर सकते किन्तु वह इतने मूक स्थिर और तटस्थ भी हैं कि कहानी में कहीं भी प्रत्यक्ष रूप से दखल नहीं देते । क्या है वो जो होकर भी नहीं है ? ज़रा ध्यान से देखने पर पता चलेगा कि वे कुछ और न होकर मुक्तिबोध के अजन्मे रूपक हैं-- कहानी के ठहरे उपादान जो होने वाली कविता में सहसा ' अन्धेरी गुफाओं और रहस्यमय सरोवरों में अपना दूसरा जीवन ग्रहण करते हैं और इस बार वे स्थिर मूक और तटस्थ नहीं हैं -- वे समूचा तन्तुजाल हैं, जिनमें मुक्तिबोध की कविता कांपती हुई जन्म लेती है कहानी में जो बर्फ की तरह जमा दिखाई देती है -- कविता में वही बिजली के करण्ट सा बहता हुआ मुक्तिबोध की समूची अन्तर्यात्रा को आलोकित कर देता है ।'[1] निर्मल वर्मा मानते हैं कि मुक्तिबोध अन्तर्विरोध के सबसे संकट क्षणों में गद्य से ऊपर उठकर कविता में जाते हैं ।

अग्न्येश्का सोनी भी मुक्तिबोध को कवि मानती हैं और उनके गद्य को भी लचीला किन्तु शक्तिशाली पाती हैं । 'गजानन मुक्तिबोध की साहित्यिक साधना मूलतः कविता के क्षेत्र में हुई वे मूलतः और अनिवार्य रूप से कवि ही थे --शुरू से आखिर तक उनकी गद्य शैली प्रायः आकर्षक और सजीव होती है । उसमें शक्ति भी है और लचीलापन भी ; पर यह बात भी असंदिग्ध है कि उनके लेखन की मुख्य प्रवृत्ति गद्य रचना की नहीं थी न ही बन सकी ।'[2] इस बात को स्वयं मुक्तिबोध भी स्वीकार करते हैं 'ट्रैजडी यह है कि लोग मुझे गद्य लिखने को कहते-- मुझे सलाह दी गई कि मैं उपन्यास लिखूं और अपना दारिद्र मिटाऊं ।'[3] वह ताकत

---

1- मुक्तिबोध का गद्य : निर्मल वर्मा : पृष्ठ- 10

2- कहानीकार मुक्तिबोध : कौन मनु : [illegible] सोनी अग्न्येश्का (आलोचना : जुलाई-सितम्बर-68: पृष्ठ-60)

3- एक साहित्यिक की डायरी : पृष्ठ-31 (भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन)

लाकर गद्य लिखने का प्रयत्न करते हैं कितनी विडम्बना है कि यह कभी कभी उनकी मजबूरी भी बन जाता है। "मैंने इस ओर काम भी शुरू कर दिया है लेकिन क्या बताऊं कि एक चीज़ है जिसका नाम है धुन, जिसका नाम है लौ... वह मुझे कविता की ओर ले जाती है लेकिन मैं वचन देता हूं कि मैं कविता नहीं बल्कि गद्य लिखूंगा।"[1]

मुक्तिबोध की कहानियां कभी कभी कविता हो जाती है और कभी कभी कविता कहानी में परिवर्तित हो जाती है "मुक्तिबोध ने स्वयं स्वीकार किया है कि जब कोई विचार या अनुभव कविता नहीं बन पाता तो वे उसे कहानी बना देते हैं। इनसे दो बातें स्पष्ट होती हैं एक तो यह कि मुक्तिबोध की अधिकांश कहानियां अब धारणात्मक (कॉनसेप्शनल) हैं वे किसी विचार या धारणा को पहले अपने मस्तिष्क में छानते हैं फिर उसे कहानी के माध्यम से व्यक्त करने की चेष्टा करते हैं दूसरी बात यह है कि उनकी कहानियां उनकी कविताओं से अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि उनकी कहानियां उनकी कविताओं की वाई-प्रोडक्ट हैं। विचार जब कविता नहीं बन पाते तब कहानियां बनते हैं।"[2] इस बात की पुष्टि मुक्तिबोध स्वयं करते हैं। एक चरम बिन्दु आता है जब वे अपनी ही कविता का गद्यानुवाद करने लगते हैं "सोचता हूं अपनी प्रबोधी कविता को किसी कहानी का रूप दे दूं। संभव है कि कहानी की कोई मासिक पत्रिका मुझे कम से कम पन्द्रह बीस रुपये दे दे। इससे मैं अपने मित्रों के सामने यह सिद्ध कर सकूंगा कि मैं अयोग्य नहीं हूं और रुपये कमा सकता हूं।"[3]

---

1- एक साहित्यिक की डायरी : पृष्ठ- 34

2- मुक्तिबोध विचारक कवि : कथाकार : सुरेन्द्र प्रताप : पृष्ठ-154

3- एक साहित्यिक की डायरी : पृष्ठ- 43

मुक्तिबोध की कविताओं का काल 1936 से 1964 तक फैला हुआ है। यह काल उनकी कहानियों का भी है अतः इतना तो स्पष्ट है कि कथा लेखन में उनकी गहरी रुचि थी और उसे वे अपनी सर्जनात्मक अभिव्यक्ति का एक अत्यंत महत्वपूर्ण माध्यम मानते रहे और उनका कथा लेखन चाहे कम ही सही कविता के समानान्तर ही अंतिम दिनों तक चलता रहा।[1] कविता की ही भांति कहानी में भी मुक्तिबोध की अपनी एक अलग संवेदना और शैली है। जो शुरू की कहानियों में दिखाई पड़ती है उनमें चरित्रों के बाहरी आचरण और भीतरी प्रतिक्रियाओं का ब्यौरा बहुत है और कविता की भांति बाहरी से भीतरी और भीतरी से बाहरी दुनियां की ओर अतिक्रमण की कोशिश निरंतर दिखाई पड़ती है। कविताओं की भांति ही, कहानियों का भी कोई बहुत निश्चित आदि या अन्त नहीं है। क्या शिल्प की यह विशेषताएं उनकी प्रारंभिक कहानियों में ही दिखाई पड़ जाती है। कविता की ही भांति उन्होंने एक ही कहानी को एकाधिक बार लिखा और उनके विभिन्न प्रारूप अक्सर कुछ सामान्य स्थितियों अथवा वाक्यों के बावजूद स्वतंत्र कहानी का रूप ले लेते हैं।[1]

यह बात उनकी अनेक कविताओं पर लागू होती है। यहां हम दो-तीन कविताओं का उल्लेख कर सकते हैं। ब्रह्मराक्षस कविता का ब्रह्मराक्षस बुद्धिजीवी का प्रतीक है तो कहानी का ब्रह्मराक्षस अभिशप्त बुद्धिजीवी का। कविता का ब्रह्मराक्षस यदि बावड़ी में कैद है तो कहानी का महल में कविता का ब्रह्मराक्षस अपनी ही गणित का शिकार होकर इतिहास-क्रम के अवचेतन में ब्रह्मराक्षस रूप से कैद हो जाता है। काठ का सपना पति-पत्नी का संतान के प्रति दायित्व, भविष्य के प्रति दायित्व उठाना ही काठ के लट्ठों को सार्थकता प्रदान करता है। निष्प्राण बहे जा रहे काठ के लट्ठे बालमूर्ति की रक्षा करनी होगी "ऐसा दायित्व बोध कर पाते हैं - यही उनकी उपलब्धि है। यही कर्तव्यबोध है जो उनकी कविताओं में भी कहीं कहीं उभरता है।

---

1- मुक्तिबोध रचनावली : 1 : भूमिका : नेमीचन्द्र जैन, पृष्ठ-17

छाती से कन्धे से चिपका है नन्हा सा आकाश
स्पर्श है सुकुमार प्यार भरा कोमल
किन्तु है भार का गम्भीर अनुभव " --[1]

बलाड इंथरली "अन्याय को देखकर चुप रह जाने वाले, अवचेतन में डाल दिये गये भावों और विचारों का प्रतीक है। कविताओं में भी मुक्तिबोध उन अवचेतन में पड़े हुए रत्नों को देख सकते हैं महसूस कर सकते हैं।

"बहुमूल्य भावों और विचारों के ---
ये मौन उपेक्षित रत्न
मैली सतहों में फंसा दबा
चुपचाप धसाये गये, छिपाये गये
... ... विविध असुविधाओं के कारक होने से
नित उपेक्षित भूमि में फेंके।"[2]

"अन्धेरे में" के नायक का शरीर कांपता है, उसकी बुद्धि उसका विवेक कांपता है। वह भागता है परन्तु यहां से वहां तक आदमी सोए थे। "उनके शरीर की गरम कोमलता उसके पैरों से चिपक गई थी -- मानो इस गहरे अन्धेरे में भी भूखी आत्माओं की हजार हजार आंखें उसकी बुजदिली, पाप और कलंक को देख रही हो।"[3]

उनकी कविता उन्हीं भयानक अनुभवों से गुजरती है।

---

1- अंधेरे में - चांद का मुंह टेढ़ा है - पृष्ठ- 289
2- वो काव्यात्म मन फणिधर : चांद का मुंह टेढ़ा है : पृ0-131
3- "अन्धेरे में" मुक्तिबोध रचनावली :3 : पृष्ठ- 94

अधूरी और सतही जिन्दगी के रास्ते पर गर्म
अचानक सनसनी चौंक
कि पैरों के तलों को काट खाती, कौन सी वह आग
भयानक, हाय, अंधा दौर
कि जीवित छातियों पर और चेहरों पर
कदम रखकर
चढ़े हैं पैर
अनगिन अग्निमय तन मन व आत्माएं
--- --- ---
कुचलता चल निकलता हूं।"[1]

इस प्रकार उनकी कहानी और कविता अविच्छिन्न रूप से एक दूसरे से जुड़ी हैं और वाई प्रोडक्ट भी कही जा सकती हैं "मुक्तिबोध की हर रचना साहित्य की सभी विधाओं को एक अजीब चुनौती है। मुक्तिबोध ने साहित्य की हर विधा को इतना तोड़ दिया है कि कविता बढ़ते-बढ़ते डायरी हो जाती है और डायरी चलते चलते कहानी हो जाती है।"[2] और यही नहीं कविताओं के समानान्तर ही मुक्तिबोध की संवेदना जिस प्रकार कविताओं में बदलती और विकसित होती गई उसी प्रकार कहानियों में भी परिवर्तित प्रभाव को स्पष्ट लक्षित किया जा सकता है। कविता में किया गया प्रहार तोड़ने ही होंगे मठ और गढ़ सब " अब अभिव्यक्ति के खतरे उठाने ही होंगे को मुक्तिबोध की कहानियां भी स्पष्ट करती हैं। मठ तोड़ने की प्रक्रिया में एक पहल है। "मुक्तिबोध की कहानियां जिस व्यवस्था में अपने पात्रों का निर्माण

---

1- अंधेरे में : चकमक की चिंगारी - मुक्तिबोध : पृष्ठ-142
2- श्रीकान्त वर्मा : भूमिका काठ का सपना : पृष्ठ- 5

करती हैं उससे उन्हें कहीं नजात नहीं मिलती । कहानियों में उस प्रकार के समाधान तक नहीं पहुंच पाते जिस प्रकार के समाधानों तक वे अपनी अन्धेरे में जैसी कविता में पहुंचते दिखाई देते हैं ।"[1] मुक्तिबोध की कहानी कविता और आलोचना तीनों के विश्लेषण से यही पता चलता है कि उनमें एक प्रकार का अंतरालम्बन है । वे अपनी बात पहले कविता में कहते हैं और जब वह जो कहना चाहते हैं कविता में नहीं कह पाते तो उन्हें कहानी के माध्यम से कहते हैं ।"[2]

अतः संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मुक्तिबोध की कविता और कहानी का कथ्य एक ही है और उनकी कविता और कहानी में बहुत फर्क भी नहीं है, उनकी कहानी का मूल्यांकन करते समय उनकी कविता उनके विचारों की गुम्फित संवेदना को समझने में सहायक होती है । यह संवेदना को समझने में सहायक होती है । यह संवेदना जो कविता के स्तर से कहानी के स्तर पर उतरती है, मुक्तिबोध की कहानी को मुक्तिबोधपन देती है ।

---00000---

---

1- सुरेन्द्र प्रताप : मुक्तिबोधः विचारक , कवि और कथाकार :पृ0-12

2- -- वही -- ,, ,, पृष्ठ- 12

# चतुर्थ अध्याय

## मुक्तिबोध की कहानियों का कथ्य और स्थापत्य (शिल्प)

(क) कथानक तथा चरित्र।
(ख) मुक्तिबोध की कहानियों की भाषिक संरचना।
(ग) विशिष्ट प्रतीकों का अध्ययन।
(घ) कहानी में निबन्ध, आलोचना, कविता आदि के तत्वों का समावेश।
(ङ) मुक्तिबोध की विचारधारा और कला।

## कथानक तथा चरित्र

मुक्तिबोध की कहानियों का कथ्य मामूली आदमी का जिक्र है। उस मामूली आदमी का जो निम्न मध्यवर्ग का कहलाकर सामाजिक ढाँचे में अपनी उपेक्षा सहन करता है किन्तु उसे स्वीकार नहीं करता। मुक्तिबोध चित्रण नहीं करते, सीख नहीं देते, उनका कथ्य उनके अनुभव की प्रतिध्वनि है। "ठीक एक मामूली आदमी है- अपनी बीती हुई जवानी से उसने सिर्फ सबक सीखे हैं, उस नौजवानी के तकाज़े उसके सामने आज भी जिन्दा हैं। उसके सवालात उसे आज भी पुकारते हैं, फर्क सिर्फ इतना है घुटने फोड़ने वाली ठोकरें आज उसे पहले सलाम करती हैं फिर पेंच लड़ाती हैं। तो ऐसे मामूली आदमी के पास इतनी बड़ी हिमाकत नहीं है कि वह नयी पीढ़ी के नौजवानों (जिनके अपने नए तजुर्बात हैं) को सीख दे सकें।"[1]

"वह" समाज में क्रांति चाहता है जिससे व्यक्ति स्वतंत्रता प्राप्त हो। वह विद्रोही है, उस समाज से, उन संस्थाओं से जो नवयुवक की व्यक्तिगत बातों में खुद को हकदार समझती है जिसमें प्रथम स्थान माता-पिता का है। वह मानता है "हमारी दृष्टि बन्धी है या हमें अन्धा होना सिखाया जाता है। हमें दौड़ने को कहा जाता है सीधा, घोड़े के समान आंखों के दोनों ओर पट्टी लगा दी जाती है, जिससे आजू-बाजू दिखाई न दे। वैशक जीने के लिए यह अपमान जनक है। आपको स्वतंत्र रीति से सोचने से अन्धकार उन्हें अपने अनुसार बनाने की चेष्टा में लगे रहते हैं।"[2] ऐसा क्यों है ?

---

1- नौजवान का रास्ता : मुक्तिबोध रचनावली :6: पृष्ठ -

2- मुक्तिबोध ग्रंथावली :3 -पृष्ठ-26

इसका उत्तर भी उनकी कहानियों में मिलता है क्योंकि परिस्थितियां कभी आपको छुट्टा नहीं छोड़ती , वे आपके लिए खुद नहीं बनती, उन्हें बनाया जाता है ।"[1]

"आखेट " के मुहब्बत सिंह की आंतरिक और बाह्य सब शक्तियां उसके विरुद्ध हैं और उसे उससे भिड़ना है । मुहब्बत सिंह जीत जाता है "आखेट " रचनात्मक हो उठता है अनाथिनी-सनाथिनी बन जाती है ।

"मोह और मरण " - बहू की घृणा पाकर वृद्ध अपने को "जस्टीफाई "करता है लालच किस के लिए ? लालच उसने अपने लिए नहीं किया । उसने अपना शरीर और मन कुटुम्ब के लिए दिया था ।"

"मैत्री की मांग " की सुशीला प्रसन्न है किन्तु कहीं दबी हुई इच्छा भी है, पति इन्टर पास होता तो अच्छा होता - थके मन की निविड शक्तियां स्वप्न में अजीब समाधान पाने लगती हैं । सुशीला देश पाण्डेय के घर आए मेहमान के प्रति आकर्षित है किन्तु वह आकर्षण कैसा है ? क्या पति के प्रति असंतुष्टी का भाव है क्या पति रामराव के मूर्त सजीव आधार और आध्यात्मिक आश्रय को मात्र फक्कड़पन में त्यागने का संकल्प कर सकती है ? संकल्प क्या कल्पना भी कर सकती है ? लेखक स्वयं सुशीला को यह जाकर पूछे तो एक जोरदार चांटे के अलावा और कुछ न मिलेगा ।"[2] यह आकर्षण पति और पत्नी के आधार-संबंध पर धक्का नहीं है यह तो एक सहज आकर्षण है जो "व्यक्ति की सज्जनता , विद्या, सम्पन्नता और शिष्टता के तेजोवलय के प्रति था । उस स्वप्न के समान सुन्दर दिखने वाले देश और नगर के प्रति था (जहां से वह व्यक्ति आया है)"[3] प्रति आगे पढ़े इसके लिए वह सोने की चूड़ियों का मोह नहीं करती । माधवराव से वे दो नारी आर्खें सहज मैत्री का भाव रखती हैं ।

---

1- मुक्तिबोध ग्रंथावली :3:पृष्ठ-26

2-3- मुक्तिबोध रचनावली:3 -पृष्ठ-43

'एक दाखिल दफ्तर सांक' में मध्य वर्गीय बाबूगिरी और उनके 'अड्डे' आफिस का जिक्र है। आफिस के यह कर्मचारी एक दूसरे से मिलते हुए भी किसी के नहीं थे। उनके परस्पर वार्तालाप और सम्मिलन का रहस्य केवल यह था कि क्या चल रहा है। एक दूसरे की पीठ पीछे बुराई करना तथा कैसे-कैसे प्रकारेण षड्यंत्र करते रहना अथवा उसी में भाग लेते रहना-यह एक नियमित व्यापार था। छोटे-छोटे सी बात पर ये व्यक्ति अपना विभाग चलाते रहते थे। यद्यपि ये सब लोग शिक्षित थे, तथा इनमें से बहुसंख्यक बी० ए० से कम नहीं थे। फिर भी उनके विभागों को देखकर कहा जा सकता था कि 'वे गंवारों और अशिक्षितों से भी निम्न श्रेणी के हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें से कौन-कौन और कितने निश्चयपूर्वक विधुर सन्तोषी थे किन्तु सामान्यतः एक दूसरे के प्रति विष-वमन करने में चतुर थे। कचहरी में खासी राजनीति चला करती थी। प्रत्येक किसी न किसी गुट का था। गुट भी ऐसे कि जिनका कोई स्थाई रूप न था मित्रता और सन्धि के कोई प्राकृतिक नियम न थे। गुट बनते बिगड़ते रहते थे, किन्तु इसके कारण आफिस के वातावरण में अनावश्यक आफसी-तनाव-खिंचाव बढ़ जाया करता और मनोमालिन्य का मौका मिलता।'[1]

इन दफ्तरों में सरकारी नौकर पलता है जिसकी अपनी कोई विचार धारा नहीं है। होती भी है तो उनके अनुसार काम करना मना होता है। पेट की गुलामी करनी पड़ती है आत्मा बेचकर। इसलिए वह व्यक्तिगत संघर्ष को यथा संभव टालते हैं जो कि वास्तव में टलता नहीं दु-मुंहा हो जाता है। जिसका प्रत्येक मुंह एक दूसरे का विरोधी और उसके अस्तित्व की अनुपस्थिति में विश्वास करने वाला होता है किन्तु यही बाद में

---

1- मुक्तिबोध रचनावली :3: एक दाखिल दफ्तर सांक -पृष्ठ-

आत्मग्लानि बन जाता है, अपनी जिन्दगी के प्रति किए गये अप्राकृतिक व्यभिचार के प्रति ग्लानि का अनुभव।

'जिन्दगी के कतरन' आत्महत्या तक पहुंचाने वाली परिस्थितियों के औचित्य-अनौचित्य पर एक टिप्पणी सी है। 'आत्महत्या करने वालों के निजी सवाल इतना उलझे नहीं होते। उनके अन्दर की विरोधी प्रवृत्तियों का आपसी झगड़ा तेज हो जाता है कि नयी ऊंचाई छू लेता है जहां से एक रास्ता जाता है जिन्दगी और नयी जिन्दगी की ओर तो दूसरा जाता है मौत की तरफ जिसका एक रूप है आत्म हत्या' [1]। शंकर पत्नी वियोग में आत्महत्या नहीं करता किन्तु पत्नी के अपहरण की घटना उसे उसकी असहता का जो बोध कराती है वही नपुंसक क्रोध अपनी असहायता और असफलता पर ग्लानि के क्षणों में 'आत्म हत्या का नाइज्जत फैसला लेता है।

पति के अस्तित्व समाप्त हो जाने पर निर्मला के अकेलेपन को तिवारी ने यदि समझा-पहचाना तो समाज को क्यों आपत्ति है? क्योंकि हमारी मध्यवर्गीय समझ तथाकथित 'पवित्र' को परिवर्तित रूप में नहीं देखना चाहती, वह इसकी अभ्यस्थ नहीं है।

यही 'प्रश्न' का भी कथ्य है। नरेन्द्र का मां से 'प्रश्न' मां तुम पवित्र हो? तुम पवित्र हो ना? सुशीला के मन में समाज से यह प्रश्न उत्पन्न करता है। पति से काका तक दो सिरों में विरोध कहां? पति की मृत्यु के बाद काका से सुशीला का संबंध अपवित्र कैसे? इन दो सिरों के मध्य स्वभाविक चिकनाहट है तब वह किस प्रकार अपवित्र हुई यह भी कोई समझाये।

---

1- मुक्तिबोध रचनावली: 3 -पृष्ठ-124

उसकी शुद्ध सरल आत्मा में कैसे अपवित्रता आ गयी ? सुशीला के इस प्रश्न का कोई उत्तर दे ?[1] वह अपने इस पवित्रा के जिज्ञासु पुत्र को बुजदिल कहती है और उत्तर में नरेन्द्र कुमार एक कलाकार हो जाता है । यह 'प्रश्न' प्रचलित जीवन मूल्यों के सामने एक प्रश्न है ।[2] मुक्तिबोध की कहानियां एक सांस्कृतिक स्तर पर एक तरफ तो साम्राज्यवादी प्रभाव की आलोचना करती है, दूसरी तरफ हमारे परिवारों में पल रहे सामंती संस्कारों की भर्त्सना करती हैं । इस समाज व्यवस्था से समझौता करके आदमी किस प्रकार पशु बन जाता है इस ओर भी संकेत है । 'इस कहानी में मुक्तिबोध ने हमारे मध्य वर्गीय परिवारों में पल रहे सामंती संस्कारों का पर्दाफाश किया है ।'[3]

'नयी जिंदगी' का रमेश लीडर और विचारक है । मुक्तिबोध राजनीति और साहित्य में उठाए नये मानव मूल्य की बात चलती है, लेकिन जहां कार्य की बात आई-खासतौर पर परिवार में मूल्यों की स्थापना की बात आई कि बड़े विचारक कन्नी काट गए । मानो घर समाज का अंग न हो । रमेश अपने पारिवारिक जीवन में ही सच्चा-परिवर्तन लाने का फैसला लेता है । उसकी वाणी सशक्त शब्दों में जिन्दगी के अनुभव और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के दृश्य स्थानीय और प्रांतीय हलचलों के ब्यौरों को काव्यात्मक अंदाज में करती है किन्तु उसका दिल गरीब घर की अवरुद्ध हवा से घुट जाता है ।

'ब्रह्मराक्षस' का शिष्य-अभिशप्त बुद्धि जीवी की आंतरिक यंत्रणा को उजागर करती है । गुरु ने विश्व की समस्त विधा को मथ डाला, उसकी

---

1-

2-

दुर्भाग्य से कोई योग्य शिष्य नहीं मिला । इसलिए उसकी आत्मा संसार में अटकी रह गई और वह ब्रह्मराक्षस हो गया । बुद्धिजीवी की अभिव्यक्ति के लिए सार्थक खोज की छटपटाहट यहाँ व्यक्त हुई है ।

'पक्षी और दीमक' गलत सौदे की कहानी है । गाड़ीवाला पंखों के बदले दीमक देता है, दीमक के बदले पंख नहीं । समझौतावादी रुख के कारण वह अपनी प्रतिरोधक शक्ति खो देता है । दीमक खाने की लत उसे न ज़मीन का छोड़ती है न आसमान का और अन्त में बिल्ली का शिकार हो वह अपने अस्तित्व को खत्म कर लेता है ।

'क्लाड ईथरली' व्यक्तिगत पाप बोध की कथा है । वह पाप बोध जो मानसिक संतुलन को बिगाड़ने वाला है । बम हिरोशिमा पर नहीं स्वयं के नैतिक मूल्यों और जीवन सत्यों पर गिराया गया । ऐसे साहसी व्यक्तियों को कैद होनी चाहिए, पुरस्कार मिलना चाहिए । कैद भी साधारण नहीं पागल खाने की कैद । क्लाड ईथरली संस्कृति और आत्मा के संकट की कथा है । विद्रोही आत्मा की कथा है । सचेत-जागरूक सम्वेदनशील मानस की आध्यात्मिक अशान्ति की कथा है जो व्यवस्था के लिए खतरनाक है । इसके पहले कि आत्मा की बेचैन आवाज़ ज़रूरत से ज़्यादा सुनकर बेचैनी में कुछ कर गुज़रे, हर देश अपने अपने क्लाड ईथरली को पागलखाने में बन्द कर देती है । जेल में नहीं । जागृत नैतिक बोध से संचालित लोगों को तो पागल खाने में ही डाला जा सकता है -- वे कोई सामान्य अपराधी तो है नहीं कि जेल में रख दें । यह हिरोशिमा, अमेरिका, क्लाड ईथरली सभी जगह है हमारे भीतर भी और बाहर भी ।

'जंक्शन' परिवार के प्रत्येक व्यक्ति के इतिहास और औचित्य को सिद्ध करती है । ये पारिवारिक सदस्य एक दूसरे का परिवेश है । पत्नी छाती पर दुनिया का बोझ सहती हुई चुन्नीलाल के प्रति कठोर हो उठती है ।

उसका कारण कोई घटना नहीं है शरीर के अस्वस्थजनित विष उसकी नस-नस में घुसकर उसे कमजोर और विक्षुब्ध करते हैं। कोई घटना नहीं किन्तु एक मानसिक वातावरण मन को लाता है। वह बच्चे को फकफोर कर उठाती है ताकि उस क्रन्दन से सारा परिवार अशांत और बेचैन हो उठे। चुन्नीलाल घर की आर्थिकस्थिति को सम्भाल पाने में असमर्थ हो उठा है। वह मन की अर्जित मध्यता का आश्रय लेता है। वह अपने अन्तर्जगत में स्वप्नों, तर्कों तथा विश्लेषणों का गुणा-भाग करता रहता है। वह अन्तर्विरोधों से टकराता है। अन्त में परिवार में स्त्री के जलने की घटना सब को उसकी सेवा में लगा देती है चुन्नीलाल कुछ नजर आता है। वह अपने अस्तित्व और आस्था से जीवन को सार्थकता प्रदान करने की कोशिश करता है।

'काठ का सपना' कहानी निम्नमध्यवर्गीय जिन्दगी की हू-ब-हू तस्वीर उतारती है अग्नेयशकासीनी इस कहानी के शिशु को जीवन का आत्मोत्पन्न सत्य मानती है। 'काठ का सपना' एक सफल सुसंगठित कृति है जो नयी कहानी के मान्यताप्राप्त ढंग से ही रोजमर्रा के छोटे-छोटे ठोस चित्रों द्वारा उस घुटन भरी गरीब मध्यवर्गीय जिन्दगी के अन्धेरे का अवलोकन करती है जहाँ, ख्यालों से माथे का दु:खना नहीं थमता, देह की थकन दूर नहीं होती, असंतोष की आग और बेबसी का धुंआ दूर नहीं होता। पर यही सब कुछ नहीं है। कहानी का वह थका हताश, नायक, जिसे सिर्फ एक सन्देह है कि इस निष्क्रियता में एक अलगाव है - एक भीतरी अलगाव जो अपने अन्दर की जड़ता से मुक्त नहीं हो पाता --- अन्त में एक सपना देखता है। वह और उसकी पत्नी, दोनों, निष्प्राण काठ हो गये हैं जो जल विप्लव में एक दूसरे से गुथे बहे जा रहे हैं लेकिन उनपर एक बालिका बैठी है। अपनी बच्ची और पिता अनुभव करता है कि उस बालमूर्ति की रक्षा करनी ही होगी। उन दोनों काठ लट्टों का यही कर्तव्य है।'

अंवशन यह कथानक व्यक्ति को अपने ही भीतर फांकने को मजबूर

करता है जहाँ नायक में मनुष्य पृष्ठ फार्म पर टहलता हुआ अपने प्रति अत्याधिक सचेत है वह उधार के ओवरकोट में शानदार हो उठा है पर सच्च का सामना भी करता है कि घर में बच्चों के पास रजाई नहीं है वह उपहास का पात्र बनता है। विचित्र समस्या है। खुद ही अकेले में अपने को शानदार समझते रहो।"[1]

वह बच्चों के प्रति अपना सन्देश छोड़ता है। गरीबी का आदर करना, अपनी जन्मभूमि के प्रति वफादार रहना और गरीबों से अपने को शानदार ना समझना क्योंकि "तुम कटे पिटे दागदार चेहरे वालों की संतान हो उनसे द्रोह मत करो। अपने इन लोगों को मत त्यागना।"[2] यह बोध उसे उसके भीतर का नंगापन कराता है। "वह अपने ही भीतर नंगा हो जाता है और अपने नंगेपन को ढकने की कोशिश भी नहीं करता।" हालांकि आज की परिभाषा में अच्छा आदमी वह होता है जिसकी बुराई ढकी रह जाती है चाहे आप ही आप, चाहे किए कराए। लेखक इस ज़हरीले तजुर्बे की अभिव्यक्ति इसलिए करता है ताकि मध्यवर्गीय व्यक्ति इस वास्तविकता को इस नंगेपन को ढकने की कोशिश न करें और यही नहीं ढकी हुई नंगी व्यवस्था की सच्चाई को भी उजागर कर दे जो इस नग्नता का कारण है। वह आदमी और आदमी के बीच की दरार को भरना चाहते हैं।

"अंधेरे में" का नायक का विवेक कांप उठता है, शरीर और बुद्धि कांप उठती है। यदि वह कदम न रखे तो एक ही शरीर पर -सारा वजन- पता नहीं स्त्री या बच्चा बूढ़ा या नौजवान, एक ही शरीर पर जा पड़े। क्या वह भागने लगे ? किन्तु कहां-कहां तक आदमी सोए हुए थे, उनके शरीर की गरम कोमलता उसके पैरों से चिपक गई थी -- पानी इन गहरे अन्धेरों में

---

1- काठ का सपना - पृष्ठ- 40

2- काठ का सपना : पृष्ठ-43

भी भूली आत्माओं की हजार हजार आँखें उसकी बुजदिली, पाप और कलंक को देख रही हो।"[1]

वह युवक कई सालों में लौटा है अपने शहर में रात को सड़कों पर घूमने निकला है कोई घटना नहीं घटना नहीं घटती किन्तु यह अंधेरे से आवृत आकस्मिक घटना में छिपा कथा जटिल और सूक्ष्म है "अन्धेरे में का कथ्य बहुत जटिल है कहानी के भीतर जो नुकीला एक कीला तेज गड़ा हुआ है वह शुरू में दिखाई नहीं देता। गहरे में छिपा है। यही घटना सम्वेदना पर घोर आघात है। पाप का बोध हमारे वर्ग का पाप-ढीले-ढाले, सुस्त मध्यवर्गीय आत्म सन्तोषियों का घोर पाप का बोध इस कहानी का कथ्य है।" यह अनुभव अपने ही वर्ग के पाप का मुक्तिबोध के सिवा हिन्दी नव-लेखन में नहीं मिलता। इसलिए जंक्शन जैसी कहानी वे ही लिख सकते थे।"[2]

विपात्र मध्यवर्गीय पुंसत्वहीनता की कथा है। सतत एक बहस चलती है, खुद से, खुद के विरुद्ध। अपने ही भीतर के भयानक संसार को वह खोलकर सामने रख देते हैं कितना विकृत है त्रासग्रस्त मानवता का चित्रण विपात्र की बारीकी है। मध्य वर्ग की मूल त्रासदी को सम्पूर्ण कोणों से उजागर करती है।

## पात्र एवं चरित्र :

मुक्तिबोध की कहानी का कथानक जटिल है। जटिल इसलिए क्योंकि वह जिन्दगी के सहज पक्ष को उसके अंतिम सिरे से पकड़ते हैं मर्म पर सीधी चोट करते हैं। उनके पात्र अत्यंत साधारण हैं और इसी कारण वह या इसी अर्थ में वे असाधारण हैं। निर्मल वर्मा के शब्दों में "मुक्तिबोध की कहानी में हमेशा-

---

1- अन्वेशका सोनी : पृष्ठ-63:कहानीकार मुक्तिबोध :कौन मनु? आलोचना :जुलाई सितम्बर-68)

2- -- वही -- पृष्ठ-63 ,, ,,

उनकी आस्था और सन्देह के बीच सतत् एक बहस चलती रहती है । पात्र दो हैं-किन्तु उनकी लड़ाई का कुरुक्षेत्र मुक्तिबोध के भीतर है कभी-कभी तो यह भीतय नहीं हो पाता कि मुक्तिबोध किसके साथ है अक्सर वह अपनी आस्थाओं को छोड़कर अपनी अंधेरी पीड़ित शंकाओं के साथ चले जाते हैं और तब ऐसे क्षणों में मुझे उनका यह वाक्य याद आने लगता है "सच्चा लेखक अपने खुद का दुश्मन होता है वह अपनी शान्ति को भंग करके ही लेखक बना रह सकता है वह अपने खुद का सबसे बड़ा आलोचक हो सकता है । जिन्दगी को वह किसी ऐसे सत्य से आलोकित कर सके जो केवल एक व्यक्ति की अमोल निधि न होकर ऐसा सार्वभौमिक सत्य जिसकी आंच में हिन्दुस्तान के करोड़ों दिग्भ्रमित संत्रस्त ठिठुरते लोग अपने हाथ सेक सकें ।"[1]

मुक्तिबोध की कहानियों के पात्र आत्मस्वीकृति करते हैं । उनकी संवेदना उनके शब्दों को समझने के लिए उनके बहुत करीब जाना पड़ता है क्योंकि उनके शब्द इतने धीमें होते हैं कि दूर रह कर शायद सुनाई न पड़ सकें । "वह "कहानी का पात्र जैसा चाहता है वैसा ही होता है पर जब वैसा होने लगता है तब उसकी चाह बदल जाती है । इसका उत्तरदायी कौन है ? भाव घटना जो बाह्य घटना से सूक्ष्म किन्तु अति तीव्रातितीव्र होती है । उसका प्रभाव भाग्य पर पड़ता है । मुक्तिबोध की कहानी के पात्र आत्मस्वीकृति करते हैं "मैं । बेशक मैं । मैंने मानस मैंने जिम्मेवार हैं ।"[2]

भावुकता के प्रति एक तथाकथित बौद्धिकता का विद्रोह भी उनके पात्रों में मिलता है । उनकी कहानियों में पात्र वार्तालाप की धारा को नियंत्रित करते हुए अपनी इच्छानुसार संचालित कर लेते हैं । यही नहीं ये पात्र मनोवैज्ञानिक पलों को खोलते हैं और प्रश्न करते हैं जिनका कोई उत्तर नहीं होता ।

---

1- मुक्तिबोध का गद्य: निर्मल वर्मा : पृष्ठ-10

2- मुक्तिबोध रचनावली:3 : पृष्ठ-29

यह सभी पात्र निम्नमध्यवर्गीय या, मध्यवर्गीय पात्र है जिनके शरीर पर उभरी हुई नाक और हड्डियां शासन करती हैं। जिनके आंखों के आसपास की त्वचा सूखकर काली पड़ जाती है। नेत्र में धुंआ सा रहता है जिसका निमित्त पहचाने पर भी उसके वास्तविक कारणों का पता नहीं चलता।[1] उनके प्रति की गई बुराइयां और अन्याय उनके मन में घुसकर एक विशेष प्रकार की वज्र कठोरता प्रदान करता है। यही आत्म दमनशील वज्र कठोरता ही तो वह सत्य है जो पात्र की गतिविधि को एक विशेष प्रकार की भव्यता, दूरी भरी स्पृहणीयता और असंख्य अपमानों के बावजूद, मनोभावनाओं का गौरव प्रदान करती हैं जो अटल और अडिग भी है।

मुक्तिबोध के पात्र कभी वह स्वयं हैं, कभी वह पात्र के साथ हैं। एक बहस चलती है, वह बीच में भी उठते हैं और पात्रों को सम्बोधित भी करते चलते हैं। वह अपने पात्रों को "प्रोटेक्शन" भी देते हैं। "मैं दोस्तोयेवस्की के चोर की तरह अपने पात्र को चोर नहीं बनाना चाहता जो आदतन चोरी करता है। मेरा पात्र चोरी नहीं करता शराब नहीं पीता। जुआ नहीं खेलता, रण्डीबाजी नहीं करता व्यर्थ की निन्दा या स्तुति नहीं करता, किसी के लेन-देन में नहीं पड़ता। लेकिन वह अपनी जिन्दगी से जुआ खेल रहा है। इसलिए कि वह कर्ज ला-लाकर घर की तंगी दूर करता है, सिर्फ इसलिए कि गणित के नशे में वह मस्त रह सके। गणित और संगीत के नशे में वह दोनों का मालिक नहीं हो सकता।"[2] वह उससे बात करते चलते हैं। "मैंने अविश्वासपूर्वक पात्रों से पूछा, तो क्या तुम शिकायत करने गए थे? पात्र के माथे पर बल पड़ गये बिरादरी के लोगों के विरुद्ध शिकायत? राम, राम। चाहे वह कितने ही बुरे क्यों न हों, समुदायिक नैतिकता है।"[3]

---

1- मुक्तिबोध रचनावली :3 -पृष्ठ-80

2- -- वही ग्रंथावली ,, पृष्ठ- 138

3- --वही,,ग्रंथावली ,, पृष्ठ-239

वह अपने को निम्नमध्यवर्गीय कहलाकर जलील होता नहीं देखना चाहता । "मैं इस बात का विरोध करता हूं कि आप निम्नमध्यवर्गीय कहकर मुझे जलील करें, मेरे फटेहाल कपड़ों की तरफ जानबूझ कर लोगों का ध्यान इस उद्देश्य से खिंचवाएं कि वे मुझपर दया करें उन सालों की ऐसी की तैसी ।"[1]

"बलाथ ईथरली ": आध्यात्मिक अशान्ति का आध्यात्मिक उद्विग्नता का ज्वलंत प्रतीक बन उपस्थित होता है और सभ्यता और मानवता पर पड़े संकट की ओर ध्यान आकृष्ट करता है । मुक्तिबोध का पात्र उनकी, सम्पूर्ण मानवता की अन्तरात्मा है, जो कभी ब्रह्मराक्षस और कभी पागल क्लाड ईथरली का आकार ग्रहण कर उनके कथानकों का नायक बनता चलता है । ये पात्र एक आन्तरिक तनाव को फेलते हैं । होने न होने के बीच का तनाव ।

यह पात्र पारदर्शी है, इनके आर-पार देखा जा सकता है । वह अपना बौद्धिक आकलन स्वयं करते हैं । "स्वर में धीमा, किन्तु गति में द्रुत और दीर्घ बकवास जो दिमाग के भीतर निरंतर चलती रहती है, उस बकवास का स्वर पहचाना सा, अर्थ जाना माना सा, उसकी मार बड़ी गहरी किन्तु सजग होकर भाषा के बन्धन प्रकट किए जाने की तत्परता के साथ, उसका अर्थ काफूर, उसका आशय काफूर ।"[2]

जिन्दगी की प्रधान समस्याएं उन्हें कुचलती चलती हैं । संघर्ष के क्षणों में वह कई बार मरते औरजीते हैं ।

---

1- मुक्तिबोध ग्रंथावली:3: पृष्ठ-142

2- मुक्तिबोध ग्रंथावली:3: पृष्ठ- 99

'विपात्र' में 'जहां सांप देखो मार डालो' का अभिश्रित आदर्शवादी पात्र नहीं अतः वहां व्यंग्य-विस्फोट होता है स्वयं पर असल में इस लम्बी कहानी का जिसका विषय उसकी चरित्र-स्थितियों का विश्लेषण है। कोई नायक भी नहीं है। या एक सामूहिक नायक है - बॉस साहब का दरबार।'

'पक्षी और दीमक' का नायक अपने कृपा पात्र नेता के विरुद्ध जाना नहीं चाहता किन्तु बाद में उसका निर्णय बदल जाता है, वह खुले आम विद्रोह पर उतारू हो जाता है। यह सहज प्रतिक्रिया नहीं है बल्कि अपनी महत्ता की कल्पना और सुविधा के भाव के विरुद्ध एक तीव्र और कष्टप्रद गुप्त संघर्ष की परिणति है।[1] 'बुराई की इसी अनेक चक्रोंवाली दैत्याकार मशीन में फंसा रहने की तकलीफ उसे जरूर है' पैर भिंच गये हैं पसलियां चूर हो गई हैं। चीख निकल नहीं पाती।'

मुक्तिबोध की कहानी का विन्यास जटिल, सघन और बहुआयामी है। वह मध्यवर्गीय जिन्दगी का ज्वलन्त दस्तावेज है। उनका कथानक उसी वर्ग की उपज है। उनका पात्र इसी वर्ग से आता है। यह कहानियां परम्परागत कहानियों से भिन्न स्तर का कथ्य प्रस्तुत करती हैं। 'मुक्तिबोध की कहानियां परम्परागत अर्थ में कहानियां हैं ही नहीं। न उन्हें तत्कालीन नयी कहानी या प्रचलित किसी अन्य कथा आन्दोलन से जोड़कर देखा जा सकता है। ज्यादा निकटता से देखने पर लगता है कि उनकी कहानियों में कई प्रकार के मिश्रण हैं, जिनसे कोई एक निश्चित सीधा व्यक्तित्व नहीं बनता। इस मिश्रण को अलग-अलग करके देखने की आवश्यकता है तभी उनकी कहानियों की सही व्याख्या

---

1- मुक्तिबोध ग्रन्थावली 3: पृष्ठ-64

हो सकती है ।" मुक्तिबोध जान बूझकर अपनी कथा स्थितियों और पात्रों के बीच एक दूरी भर देते हैं । इससे कहानियों की तत्कालीनता को समाप्त करने के साथ-साथ मुक्तिबोध सामान्य अर्थ में प्रचलित समकालिकता की रूढ़ियों को भी तोड़ते हैं । यह कार्य वह कई स्तरों पर करते हैं । पहली बात तो यह कि जो प्रश्न नयी कहानी अथवा समकालीन कहानी के द्वारा सामान्यत: उचरित समझ कर छोड़ दिए गये थे और जिन्हें फिर सामने लाने का जोखिम कोई कहानीकार नहीं उठा रहा था । मुक्तिबोध कविताओं की तरह कहानी में भी "अभिव्यक्ति के खतरों को उठाते हैं ।

कहानियों में भी कविताओं की भांति बुद्धिजीवी और मानव सभ्यताके संकट को जूझते नज़र आते हैं (विपात्र, क्लाड ईथरली)"[1] निर्मल वर्मा भी मुक्तिबोध को मध्यवर्ग का सशक्त लेखक मानते हैं । "वह " मुक्तिबोध अपने वर्ग के भारतीय मध्यवर्ग के सबसे निर्भीक और निर्मम आलोचक थे । उनकी दृष्टि में मध्यवर्ग का व्यक्ति सबसे कृत्रिम पीड़ित और खोखली जिन्दगी जीता है । क्योंकि उसे हमेशा अपनी धरती से ऊपर या नीचे जाने के लिए विवश होना पड़ता है । मुक्तिबोध जिन्दगी भर इस वर्ग की तपती फुलसती जमीन पर चलते रहे, नंगे पैर चलते रहेंताकि अनुभव के समस्त कोटर कोने उनकी अन्तरात्मा का तार-तार टेस्सवर छान सकें । यदि उनके लेखन में इतनी बेचैनी और बदहवासी छटपटाहट दिखाई पड़ती है तो इसलिए कि उनका वर्ग से गहन प्रेम और अथक वितृष्णा का रिश्ता था । वे न तो मध्यवर्ग के होकर , अपने नैतिक मूल्यों को फुठलाना चाहते थे न उसे छोड़कर अपने अनुभवों से विश्वासघात करना चाहते थे न क्या कोई ऐसा दर्शन नहीं था जो मूल्यों और अनुभवों को एक सार्वभौमिक सत्य में ढाल सके । मुक्तिबोध जिस समाज से आए थे वहां अकेला व्यक्ति अपने निजी व्यक्तिगत दर्शन में क्या-क्या सत्य नहीं

---

1- मुक्तिबोध : मुक्तिबोध विचारक कवि और कथाकार : सुरेन्द्र प्रताप : पृष्ठ- 155 ।

ढूंढ सकता था । वह चरमराती विपत्तियों में टूट सकता है या अपने वर्ग को छोड़, अपनी आत्मा को कुचलाकर उच्चवर्ग की नकली झूठी जिन्दगी जी सकता है । मुक्तिबोध की छटपटाहट ऐसा विकल्प खोजने की थी, जिससे वह अपने वर्ग के प्रति ईमानदार होकर भी अपनी अन्तरात्मा के सत्य को सुरक्षित रख सकें ।"[1]

अत: हम कह सकते हैं कि मुक्तिबोध मध्यवर्ग के लेखक हैं । वे उस वर्ग के नैतिक-मूल्यों और जीवन सत्यों को उजागर करते हैं । चाहे इसके लिए उनके पात्रों को अपने ही भीतर नंगा क्यों न हो जाना पड़े ।

## भाषा तथा शिल्प

मुक्तिबोध मूलत: एक कवि थे अत: उनकी काव्य भाषा पर चर्चा अधिक हुई है । मुक्तिबोध की भाषा भी अपने आप में सशक्त और सटीक है -- कहीं कहीं करारे व्यंग्य को लिए हुए है किन्तु उसकी प्रमुख विशेषता वह स्तर है जिससे भाषा निकलती है । इन कहानियों की भाषा युग की विचारधारा, भावचेतना और सम्वेदना की वो भाषा है जो पात्र में के रूप में बोलता है । मुक्तिबोध ने स्वयं भी इस स्तर की चर्चा की है ।" साहित्य का मूल्यांकन करते हुए इस सतह (कौन किस सतह से बोलता है ) का भी ध्यान रखना पड़ता है । कवि का शब्द चयन, छन्दो रचना, प्रकृति वर्णन, स्वभाव चित्रण अत्यंत सुन्दर होते हुए भी यदि सतह ऊंची नहीं है तो वह उच्च कलाकार नहीं कहला सकता ।"[2] यह सतह कौन सी है ? यह सतह है जीवन के प्रति प्रकट की गई सच्चाई, इमानदारी ।"जीवन किसी दायरे में नहीं बंध सकता, और जहां जहां जीवन के प्रति सचाई प्रकट की गई है वहां-वहां

---

1- निर्मल वर्मा : मुक्तिबोध का गद्य : पृष्ठ- 6

2- मुक्तिबोध रचनावली :5 पृष्ठ- 23

कला अपने सम्पूर्ण सौन्दर्य के साथ प्रकट हुई है । किन्तु जहां किसी अन्यवाद या बौद्धिक विश्वास से जीवन को देखा गया है वहां जीवन की ताज़गी और प्रभाव संगीत लुप्त हो गया है ।"[1]

मुक्तिबोध की कहानियों में जीवन के प्रति यह ईमानदारी और ताज़गी ही सर्वथा प्रकट हुई है और उनकी कहानियों की भाषा शैली की विशिष्टता के कारण ही अधूरी कहानी भी अधूरी नहीं लगती । उनका शब्द चयन निरर्थक शोर या बचता नहीं है बल्कि विचारों की उलझी, गुम्फित ग्रंथियों को चित्रित करने वाला होता है । बड़े-बड़े अर्थ शब्दों का प्रयोग यदि कथ्य को प्रकट करने में असमर्थ होता कलात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हुए भी रचना के लिए निरर्थक होगा ।" शब्द अपने आप में अर्थवान होते हुए भी कितने निरर्थक है उन्हें पढ़कर या सुनकर हमारे युवक को ऐसा मालूम नहीं होता जैसा उसकी जिन्दगी की बात की जा रही हो । समाज, जनता, राष्ट्र उसके परे की, उसके ऊपर और उसके दूर कोई चीज़ है जिसे उसे प्राप्त करना है । ये दूरी इन शब्दों को निरर्थक बना देती है । ये जितने पीटे जाते हैं उतने बजते हैं बोलते नहीं ।"[2]

मुक्तिबोध की कहानियों के शब्द बोलते हैं बजते नहीं हैं । अपने पात्रों के सौन्दर्य चित्रण में जब उनकी कलम उठती है तब शब्द चित्र पात्र का पूर्ण परिचय तक दे जाता है ।"मैंने देखा, उसके चौड़े भाल पर दो समानान्तर रेखाएं, रेल की पटरी सी चली जा रही है, भौंहों के बीच का हिस्सा कई रेखाओं से कट गया है गुप्त क्रोध से लाल चेहरा और ऊपर बालों से टपकने वाली पसीने की एक बूंद । उफ कितना सुन्दर दिख रहा था वह ।

---

1- मुक्तिबोध रचनावली :5 पृष्ठ-21

2- -- वही -- ,, पृष्ठ-21

लेकिन कितना छिपा हुआ ।..... मैं कितनी उससे ईर्ष्या कर रहा था ।"[1]

उनकी भाषा जिन्दगी के उस सच को वातावरण निर्माण में ही प्रकट कर देती है जो कहानी के कथ्य में कहीं भीतर छिपा रहता है । "दूर सिर्फ एक कमरा खुला है, भीतर से कारिडोर में रौशनी का एक ख्याल फैला है रौशनी नहीं, क्योंकि कमरे पर एक हरा पर्दा है ।"[2]

पात्रों के स्वभावगत विशेषताओं और उनपर परिस्थितियों की मार की उपमाएं जो मुक्तिबोध भाषा में हैं वे बेजोड़ हैं । "जिस प्रकार नया रास्ता सालों की आमद-रफ्त के बाद, घिसकर, उखड़कर निर्जीव धनी धूल की एक रूपता में परिवर्तित हो जाता है उसी तरह सुशीला का हृदय पथ समय के नालदार जूतों और उसकी ठोकरों से घिसकर धनी निर्जीव धूल की एक रूपता में परिवर्तित हो गया है ।"[3]

उनकी भाषा बड़े-बड़े चित्रों की अपेक्षा-छोटे-छोटे चित्र बनाती है । मुक्तिबोध स्वयं अपनी डायरी में कहते हैं , आसमान का बिम्ब सधे ना सधे सामने के मले डबरे में सूरज के बिम्ब का चित्रण करना चाहिए । शायद वह मेरे जीवन के अधिक निकट होगा । उतना चित्रण मुझसे सध भी जाएगा ।"[4]

उनकी भाषा मध्यवर्गीय जीवन की "सांवली गहराइयों" की रुंधी हवा की गन्ध को समुद्र के मल्लाह सी चित्रित करने में सक्षम है । "बायीं ओर के छोटे ठिगने दरवाजे से घुसने पर एक पुरानी, चांदनी लगी, जिसकी मुंडेर पर बेफिक्रीके कारण, पानी ना देते रहने से सूखी हुई भूरी तुलसी और अन्य

---

1- मुक्तिबोध रचनावली:3 पृष्ठ- 21 "वह"

2- -- वही -- पृष्ठ-143 "समकालीन"

3- -- वही -- पृष्ठ- 45 "मैत्री की मांग"

4-

इसी तरह के पौधे कुण्डों में लगे हुए थे, जो हरियाली के अभाव में जंगली परित्यक्त और वीरानी की निशानी से प्रतीत होते थे । वहीं खाट पड़ी हुई थी जिसपर मैले व फटे हुए बिस्तर इकट्ठे भी नहीं किए गए थे ।[1] पात्रों की कीमती जायदाद का सादा चित्र --"ओवरकोट समेत मैं बिस्तर पर ढेर हो जाता हूं ।टूटी चप्पलें बिस्तर के नीचे, सिर के पास, इस तरह जमा देता हूं मानों वह धन हो । धन तो है हो । कोई मार ले तब पता चलेगा ।"[2]

उनकी भाषा की कथन शैली एक अन्य विशेषता है । यही कथन शैली उन्हें कहानी के आन्दोलन से भी अलग करती है और वे किसी दायरे में नहीं बंध पाते । प्रत्येक कहानी कहने का उनका अपना एक विशिष्ट ढंग है किन्तु विपात्र-"क्लाड ईथरली " तथा "पक्षी और दीमक " कहानियों का कथा शिल्प निराला है ।" महेश भटनागर के शब्दों में यही तीन कहानियां है जिनका कलापक्ष, सबसे समृद्ध, मौलिक और चुनौती देने वाला है । ये मानों आलोचनाओं के चमकते तारों से बनी हैं, तारों की कठोर चमक और उनकी बारीक बुनाई, दोनों चीजें निराली हैं । बयान के अनेक स्फुट रोमांचक टुकड़े स्पष्ट रूप से प्रतीकात्मक हैं जैसे सांप की चर्चा (पक्षी और दीमक -विपात्र) अपने चेहरे के बिगड़े अक्स के दर्शन (पक्षी और दीमक "क्लाड ईथरली ) या वह शुरू में हंसी का ठहाका (विपात्र) जो आखिरी सीन में क्रूर उपहास का रूप लेता है यहां तक कि कहानी पात्रों की शक्लसूरत भी प्रतीकात्मक है । जैसे भ्रष्टाचारी बॉस का गदबदापन (पक्षी और दीमक या विपात्र) या "क्लाड ईथरली " में गुप्तचर के जिस्म की जनाना लचक जिसके बारे में लेखक कहता है "इस शख्स का जनानापन खास मानी रखता है ।"[3] इन व्यंग्य भरे

---

1- मुक्तिबोध रचनावली :3 : जिन्दगी की कतरन पृष्ठ-76

2- मुक्तिबोध रचनावली :3 : जंक्शन: पृष्ठ-217

3- मुक्तिबोध रचनावली :क्लाड ईथरली: पृष्ठ-171

प्रतीकों का घुमावदार आवृत्ति, निरन्तर केन्द्र बिन्दु की ओर संकेत करता है चलता है इसी तरह जैसे 'क्लाड ईथरली ' में रास्ता हर बार अनिवार्यतः जाता है -- पागलखाने की ओर ।"

'क्लाड ईथरली ' शिल्प और कथन शैली की दृष्टि से अद्वितीय है । सही मायने में यह मुक्तिबोध की प्रिय कलाशिल्प फैंटसी ही है । उनकी कविताएं फैंटसी होती हैं और उस फैंटसी में एक भयंकर सत्य छिपा रहता है । 'क्लाड ईथरली ' में एक पागल की तेज स्फटिक सी तेज आँखें हैं, एक गुप्तचर है जो अजीब और खतरनाक है । यह लोक ही अजीब है । यहाँ पान की दुकान से लेकर अमरिका तक है । यह भयावह भाववादी फैंटसी मानव की नियति का गहरा यथार्थ बोध कराती है ।"[1] इसीलिए तो "हिरोशिमा वाला क्लाड ईथरली इस पागल खाने में है ? तो क्या यह हिन्दुस्तान नहीं है ? हम अमेरिका में रह रहे हैं ? किन्तु यह फैंटसीगत सत्य गले के नीचे नहीं उतरता कि 'भारत के हर बड़े नगर में एक-एक अमेरिका है हिन्दुस्तान भी एक अमेरिका ही है '[2] यह जानी चाउ वाला सी०आई०डी० अवचेतन में पड़े उन विचारों की भनक पा जाता है जो सिद्ध करते हैं कि 'उनकी '(पश्चिम की) संस्कृति और आत्मा का संकट हमारी आत्मा का ही संकट है । अतः क्लाड ईथरली ' हमारे यहाँ भी मौजूद है किन्तु वह खुले आम नहीं रहता, वह रहता है सम्वेदन शील जन के मानस में, आत्मा की बेचैनी बन जो पाठक ही कहला सकते हैं । और इसलिए ऐसे ख्याल मस्तिष्क में डाल दिए जाते हैं क्योंकि वह एक पागलखाना है ।" आजकल हमारे अवचेतन में हमारी आत्मा आ गई है, चेतन में स्वहित और अधिचेतन में समाज से सामन्जस्य का आदर्श ।"[3] यह तो आत्म पश्चाताप बन सताता है अपनी ही समझौतावादी निष्क्रियता का दुःख ।

---

1- नामवर सिंह --कविता के नये प्रतिमान :पृष्ठ-239-421

2- मुक्तिबोध रचनावली : 3 पृष्ठ-174

3- मुक्तिबोध रचनावली :3 पृष्ठ-177

"ऐसे बहुत लोग हैं जो पापाचार रूपी डाकुओं को शोषण रूपी डाकुओं को अपनी छाती पर बैठा समझते हैं। वह डाकू केवल बाहर का व्यक्ति नहीं है वह उनके घर का आदमी है।"[1] कथानायक को सी०आई०डी० जासूसी का धंधा अपनाने की सलाह देता है और खौफनाक सत्य का उद्घाटन होता है "तुम सरीखे जागरूक सम्वेदनशील जन कलाह ढूँढ़ रही है।"

मुक्तिबोध की भाषा का प्रकाश भीतर के अन्धेरों को उजागर करता है। वह बाहर की रोशनी को मिथ्या घोषित कर सकने में समर्थ है सन्नाटे को चीरकर प्रकट होने वाली ध्वनि है। "मुक्तिबोध की संकल्पधर्मी, चेतना का रक्तप्लावित स्वर" सन्नाटे के दायरे को तोड़ता हुआ तेज बजता है। उदासीनता के विरुद्ध, अलगाव के विरुद्ध। मानवीयता की जलती पीड़ाओं से हमारे भीतरी अलगाव के विरुद्ध।"[2]

अतः कथ्य के साथ-साथ भाषा भी मुक्तिबोध की कहानी को मुक्तिबोध-पन देती है। प्रतीक के माध्यम से प्रकट कथ्य तेज घाव करता हुआ भीतर तक धंस जाता है और मानसिक पीड़ा को उजागर करता है। "शक्ति ही नहीं कि उठ सकूं जरा भी।" नियति, असफलताओं, सफलताओं, आशा, हताशा आत्मविश्वास तनावों की सशक्त अभिव्यक्ति करने वाली सशक्त भाषा का प्रयोग कर मुक्तिबोध ने कहानी के कथ्य को विशिष्ट और समृद्ध बनाया। कथ्य के स्तर पर ही नहीं भाषा-शैली के स्तर पर भी वह समकालीन कहानी के आन्दोलन से अलग है।

---

1- मुक्तिबोध रचनावली : 3 पृष्ठ- 177

2- अन्वेषिका सोनी : कहानीकार मुक्तिबोध : "कौन मनू"? पृष्ठ- 66।

## विशिष्ट प्रतीकों का अध्ययन

मुक्तिबोध की कविता और कहानियों का कथ्य एक ही है अत: उनकी कहानियों के प्रतीक और फैंटसी कविताओं के प्रतीकों के पर्यायवाची हैं। ये प्रतीक कहानी के वातावरण और सम्वेदना को समझने में सहायक हैं इनकी संक्षेप में चर्चा आवश्यक है ।

मुक्तिबोध की कविताओं की तरह उनकी कहानियों में भी अन्धेरे की मुख्य भूमिका है । प्रतीक अपने में सारगर्भित होते हैं और लेखक के संवेदनात्मक उद्देश्य को प्रकट करते हैं । शमशेर के शब्दों में "मुक्तिबोध के हर इमेज के पीछे शक्ति होती है । वे हर वर्णन को दमदार अर्थपूर्ण और चित्रमय बनाते हैं । कुछ कवि अभिव्यक्ति के लिए विशिष्ट शब्दों की खोज करते हैं । मुक्तिबोध विशिष्ट बिम्ब बल्कि उससे अधिक विशिष्ट प्रतीक योजना लाते हैं ।"[1]

मुक्तिबोध अन्धेरे की सर्वाधिक चर्चा करते हैं यह "अन्धेरा" यह बिम्ब आसपास के परिवेश में व्याप्त मिथ्या चेतना का प्रतीक है । जबकि आत्म चेतना सदैव प्रकाश से जगमगाती रहती है ।" बाहर का काला अन्धेरा भीतर के प्रकाश से फट जाता है ।[2] बाहर अन्धेरा होने पर भीतर की शक्तियां विरुद्ध हो भीतर एक अदम्य प्रकाश उत्पन्न करती हैं जैसे मुहीबुबत सिंह बाहर के अंधेरे क्षणों में ही अपने भीतर के मनुष्य को पाता है और सारी पशुता का त्याग कर अनाथिनी को सनाथिनी बना लेता है । इसी तरह कारिडोर अन्धेरे से भरे रहते हैं जिनमें रोशनी का एक ख्याल फैला रहता है । जहां कभी कभी कबूतरों का घोंसला उसे और भी भयानक कर देता

---

1- शमशेर: पृष्ठसंख्या : 25: चाँद का मुँह टेढ़ा है: (भूमिका)

2- मुक्तिबोध रचनावली :3 विद्रूप पृष्ठ-194

है । किन्तु इस अन्धेरे के केन्द्र में सतत प्रकाश रहता है । मुक्तिबोध को अन्धेरे में ही अभीष्ट वस्तुएं दृष्टिगत होती हैं । विसंगति, विडम्बना, तनाव आदि अमूर्त वस्तुओं को यह अंधेरा ही मूर्त करता है । उनकी कहानियों की यात्रा अन्धेरे से शुरू होकर । प्रकाश की ओर जाती है । अंधेरे में छुपी पाप भावना विवेक के प्रकाश से जगमगा उठती है । (अन्धेरे में) ।

शिशु : कविताओं में प्रकट यह शिशु ही मुक्तिबोध की कहानियों के वक्तव्य को प्रकट करता है । यह शिशु नये जन्में सत्य का प्रतीक है । यह नया सत्य बोध बीमार समाज के प्रति वैज्ञानिक दृष्टि देने वाला, नया अनुभव, नया सत्य है जो जीवन्त बालक रूप में प्रकट हुआ है । यह वही शिशु है जो सर्वहारा रूप में हर जगह, चाहे जहां, चाहे जिस रूपमें उपस्थित रहता है जो हृदय को देता है बिजली के झटके । काठ का सपना के दम्पति का निष्प्राण हो बहते जाना और अन्त में उसपर शिशु बालिका सरोज का बैठा होना भी इसी नए बोध का प्रतीक है । उसी दायित्व की याद दिलाना है जो इन निष्प्राण काठ के लट्ठों का कर्तव्य है ।

ब्रह्मराक्षस : ब्रह्मराक्षस अभिशप्त बुद्धि जीवी का प्रतीक है । हालांकि कहानी का ब्रह्मराक्षस उतना सशक्त नहीं है जितना कविता का फिर भी बुद्धिजीवी की भीतरी बेचैनी को अभिव्यक्ति कर पाने में सफल है । वह ब्रह्मराक्षस है क्योंकि उसने विश्व की समस्त विद्या को पढ़ा किन्तु उसका दुर्भाग्य कि उसे कोई योग्य शिष्य नहीं मिला, जिसे वह समस्त ज्ञान दे पाता । अतः अभिव्यक्ति के अभाव में वह जैन रहने वाला ब्रह्मराक्षस हो जाता है जिसकी आत्मा भटकती है ।

तलाब : मुक्तिबोध की कहानी में तलाब की चर्चा भी बार-बार आती है जो वातावरण के चित्र का अक्स प्रकट करता है जो भयानक किन्तु सत्य है । यह तलाब आधुनिक नगर की सभ्यता की दुखान्त कहानियों का वातावरण अपने

पक्षा पर तैरती पिरासी हवा में उपस्थित करता है ।

वृक्ष : घना, गूढ़ और 'बच्चाइयों' का यह वृक्ष मुक्तिबोध की पैनी जीवनदृष्टि और विस्तृत जीवन दर्शन का प्रतीक है जिसके नीचे सब को विश्राम आश्रय मिलता है । हालांकि यह पेड़ विराम चिह्न सा खड़ा है । इसकी शाखाएं कटी हैं जो अपने अन्तरालों में से तीव्र और कष्टप्रद 'प्रकाश को ही मार्ग दे सकती है किन्तु चिलचिलाती दुपहरी में यह सभी का सुखद आश्रय स्थल है ।

पक्षी : मध्यवर्गीय मानसिकता का प्रतीक यह पक्षी समझौतावादी व्यक्ति की नासमझी-सौदा प्रवृत्ति का प्रतीक है जो अपना निजीत्व दांव पर लगा कर अपनी 'चाह' पूरी करना चाहता है । पक्षी बुद्धिजीवी का भी प्रतीक है ।

दीमक : वह नशा है जिसके स्वाद लगने पर मध्यवर्गीय व्यक्ति कुछ भी करने को तत्पर है । अपने अस्तित्व को मिटा कर भी वह 'दीमक' पाना चाहता है । अपना विशिष्ट देकर वह उसे खरीदना चाहता है । यह भी उच्चवर्गीयों (धरती वासियों) का आकर्षण है जो आकाशवासियों (मध्यवर्गीय का) स्वाभाविक आधार नहीं है ।

'ब्लाड ब्रैथरली :' यह पागल ब्लाड ब्रैथरली 'आध्यात्मिक अशान्ति का, आध्यात्मिक उद्विग्नता का ज्वलन्त प्रतीक है ।'[1] यह अवचेतन के डाल दिये गये उपेक्षित विचारों, दबाई गई आत्मा की आवाज-उपेक्षित विवेक का प्रतीक है जो मस्तिष्क के पागल खाने में बन्द है जो अत्यधिक उच्छृंखल हो सकते हैं । यह सम्वेदनशील जागरूक संवेदनशील जन का प्रतीक है जो कैद कर लिया जाता है सत्ता द्वारा कैद खाने में नहीं पागलखाने में क्योंकि वह व्यवस्था के लिए खतरनाक है ।

---

1- मुक्तिबोध रचनावली 3 : ब्लाड ब्रैथरली : पृष्ठ- 176

मुक्तिबोध की प्रतीक योजना विशिष्ट है और कहानियों को कलात्मकता के साथ साथ एक वज़नदार वस्तु निर्माण में सहायक है ।

## मुक्तिबोध की कहानियों में कविता, निबन्ध, आलोचना के तत्व

मुक्तिबोध की कहानियों में निबन्ध, आलोचना, कविता आदि सभी विधाओं के तत्व घुले मिले हैं मानों वह एक दूसरे से गुथे हुए हों उनमें एक अंतरालम्बन अंतरालम्बन-सा है "मुक्तिबोध की कहानी, कविता और आलोचना तीनों के विश्लेषण से पता चलता है कि उनमें एक अंतरालम्बन है । मुक्तिबोध अपनी हिन्दी के अकेले कवि आलोचक तथा कहानीकार हैं जिन्हें उनकी रचनाओं के माध्यम से भली प्रकार पहचाना जा सकता है । मुक्तिबोध अपनी बात पहले कविताओं में कहते हैं और जब कविताओं में नहीं कह पाते तो कहानी में या डायरी का माध्यम चुनते हैं । इस प्रकार अपनी बात को कहने के लिए अलग-अलग माध्यम का चुनाव करते हैं कविता कहानी में जो बात पूरी नहीं होती उसे आलोचना में रचना प्रक्रिया के विश्लेषण द्वारा स्पष्ट करते हैं ।[1]

सिर्फ कहानी में भी मुक्तिबोध एक कथाकार के अतिरिक्त कवि, आलोचक, निबन्धकार अन्य लेखक सब हो उठते हैं । भूत का उपचार कहानी में वह लिखते हैं "कविताएं मैंने आपको इसलिए बताईं कि जब कहानी न लिख पाया तब उसके भीतर का आवेग मन में बचा रहा, भाव नहीं, विचार नहीं, कथानक नहीं, पात्र नहीं, प्रसंग नहीं । मात्र एक उद्वेग, मात्र एक आवेग । जब मैंने ये कविताएं लिखीं तब मुझे समझ आया कि आवेग कितना जोरदार था । उसे किसी न किसी तरह अपने को प्रकट करके बिल्कुल खो देना था ।"[2]

---

1- मुक्तिबोध : कवि: विचारक और कथाकार :सुरेन्द्र प्रताप पृ०-165

2- भूत का उपचार-मुक्तिबोध रचनावली: 3 पृष्ठ-136

उन्हें कथानक नहीं सूझ पड़ा अत: कविता कह दी यानी कभी कभी कविता कहानी की "सम्भाव्य घटना" बन जाती है जो "टाइमबम" की तरह कथ्य कथ्य में छिपी रहती है जिसे मुक्तिबोध का कवि टाल जाता है।[1] "शायद हर लेखक को इस बात का सामना करना पड़ता है। मैं तो क्षणिक उच्छ्वासों की कविता करना ही मुझे समझता हूं मतलब कि लिखना टाल जाता हूं।" परन्तु वास्तव में यह हमेशा नहीं हो पाता और अचानक मुक्तिबोध कभी लिखने, और कभी सुनाने लग जाते हैं। कथानक न बन पाने पर तैश में वे कुछ लकीरें शब्दों में बांधते हैं :

फांसी पाना मरना अच्छा होता है।
मन बच्चा है
अगर आदमी बन न पावे
उसे मार दो
मन... ...

और कभी-कभी कविता पढ़ने की जगह सुनने की चीज़ हो जाती है। "हाथ पटकाते हुए। कुछ बुदबुदाते हुए। पागल सी भागती वे। और कुछ बुफाती-भड़कती वे हाबुध चंचल सी। स्वयं से निकली भयंकर ज्वाला रेखाएं फपटती सी। लिपटती सी चौमुखी वे अग्नि शाखाएं प्रकट होती हैं। गुप्त होती। नील लहरे चौंधियाती हैं। आसमानी बादलों पर आत्म चिन्ता फैल जाती है।"[2]

इस प्रकार की कविता की मुक्तिबोध की कहानी में हर समय संभावना रहती है यही नहीं कहीं कहीं वह पात्र का मनोविश्लेषण करते हुए किसी विषय पर निबन्ध सा लिखने लगते हैं। "अगर जिन्दगी मनबहलाव है तो बाज़ आए ऐसे मन बहलाव से। क्योंकि इस तरह का मन बहलाव सिर्फ

---

1- निर्मल वर्मा : मुक्तिबोध का गद्य : पृष्ठ-3

2- मुक्तिबोध रचनावली :3 भूत का उपचार -पृष्ठ-136

खालीपन और उदासी छोड़ जाता है । जीवन में यदि केन्द्र स्थान न हो तो भारी कोलाहल भरी भीड़ में रहते हुए भी आप अकेले हैं और यदि वह है तो रेगिस्तान के सूने मैदानों पर भी आप को सहचरत्व प्राप्त है और जिन्दगी हरी भरी है । सिर्फ उपन्यास, पैसा, कमाई, और अध्ययन , शादी इत्यादि अपने में कुछ नहीं है, उनका वृहद् लक्ष्य होता है और होना चाहिए ।" कहानी के अन्त में कभी कभी मुक्तिबोध आलोक्त हो उठते हैं "क्या वह जीवन अपने आप में पवित्र था ? एक तरह से था भी क्योंकि उस अगति के जड़ीभूत क्षेत्र की सीमा के अन्दर जो साहस निर्मला ने किया वह एकदम गलत था । उसने अगति को बढ़ा दिया, उसे अधिक भयावह कर दिया , इससे तो उसका प्रारंभिक भूल अगतिमय जीवन क्या बुरा था ? उसमें यक्ष्मापन की सफेदी तो थी, एक बने हुए मार्ग से सामंजस्य तो था । चाहे वह कितना ही आत्महननकारी तथा जीवन हननशील हो । जिन्दगी की कोई भी अवस्था क्षेत्र या स्थिति या फल इतने बुरे नहीं होते जबकि उन्हें किसी भी प्रकार के सामंजस्य का आधार प्राप्त होता रहता है । यदि वह सामंजस्य बुरा है , अपवित्र है या अवनित की ओर ले जाने वाला है तो उसे बदल कर नयी परिस्थिति पैदा करके, नया सम्यक सामंजस्य पैदा करना चाहिए ।"[1]

अन्त में हम प्रमोद वर्मा की बात से सहमत हैं कि मुक्तिबोध की कहानियां उनके काव्य संसार का प्रोजेक्शन लाती हैं । जिस तरह बरगद अपनी जड़े ऊपर की तरफ फेंकता है कुछ उसी तरह धरती पर मज़बूती से जमे रहने के लिए उनकी कविता भी गद्य के आकाश से नज़दीकी नाता कायम रखना जरूरी मानती है । उनकी दीगर रचनाओं की तरह कहानियों को भी हिन्दी की चालू कथा परम्परा के अन्तर्गत समाविष्ट करना मुश्किल है क्योंकि अपनी अराजक प्रवृत्ति के चलते मुक्तिबोध कला रूपों के स्वीकृत मान प्रतिमानों की

---

1- मुक्तिबोध रचनावली :3 -जिन्दगी की कतरन : पृष्ठ-83

तनिक भी परवाह नहीं करते , उनकी डायरी कहानीनुमा है और कहानियां डायरी नुमा । कविता की चिरपरिचित फैंटसी दोनों में ही समान रूप से मिलती है और उनका विचार गद्य सभी विधाओं के दरवाजे पर खुल्लम खुल्ला दस्तक देता है -- चाहे वह कहानी हो या कविता उनकी कविता को वक्तव्यों से परहेज है न उनकी कहानियों को । उन्हें तो रचना में जीवन का चित्रण करना था जो आलोचना के बिना उन्हें संभव नहीं जान पड़ा होगा ।'[1]

## मुक्तिबोध की विचारधारा और कला

मुक्तिबोध मार्क्सवाद से प्रभावित लेखक हैं । मार्क्सवाद से ही मुक्तिबोध ने दृष्टि प्राप्त की नये साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र में उन्होंने लिखा है 'मार्क्सवाद मनुष्य के कृत्रिम रूप से बौद्धिक नहीं बनाता वरन् उसे ज्ञानावलोकित आदर्श प्रदान करता है । मार्क्सवाद मनुष्य की अनुभूति को ज्ञानात्मक आदर्श प्रदान करता है । वह उसकी अनुभूति को बाधित नहीं करता वरन् बोध युक्त करते हुए उसे अधिक परिष्कृत और उच्चतर स्थिति में ला देता है । संक्षेप में मार्क्सवाद का मनुष्य की संवेदना क्षमता से कोई विरोध नहीं है, न हो सकता है ।'[2] वह साहित्य को समाज और जीवन से संबोधित मानते हैं । समाज में हो रहे जीवन का शोषण, अवसरवाद भ्रष्टाचार की सत्ता का विरोध उनकी कहानी का स्वर है । समाज के भीतर विभिन्न वर्गों की खाईं है जिनमें मुक्तिबोध की सहानुभूति निम्नवर्गों के साथ है । सामाजिक स्थितियों एवं उसके भीतर चलने वाले विभिन्न वर्गों के पारस्परिक विरोधों संघर्षों का विवेचन करते हुए मुक्तिबोध इस बात को स्पष्ट करते हैं कि वर्गों के बीच जब असामंजस्य अधिक हो जाता है तब सामाजिक तनाव का जन्म होता है।

---

1- विनिबन्ध, प्रमोद वर्मा : पृष्ठ- 19
एम० पी० पब्लिकेशन-50 निर्पांदा रोड, जबलपुर

2- नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र -पृष्ठ-104

विपात्र के विद्याकेन्द्र के संस्थापक नहीं चाहते कि उनके सहकर्मी गंदी बस्ती में जाएं, गंदे होटलों में चाय पियें। गली मुहल्ले के अशिष्ट अनपढ़ लोगों से घुले मिलें। वे चाहते हैं वे एक स्टैंडर्ड की जिन्दगी जिएं। अपने दायरे में रहकर सुख और प्रतिष्ठा की जिन्दगी बसर करें। किन्तु मुक्तिबोध के पात्र की पीड़ा का यही एक मुख्य कारण है। वह समाज से कटकर जीना नहीं चाहता वह समाज से फासला रख आत्म प्रसार और समाज संस्कृति को रोकने वाली इस शर्त को मानने को तैयार नहीं है।

मुक्तिबोध की कथाओं के केन्द्रीय पात्रों के पैरें बिवाइयों से भरे हैं जो धूर भरे रास्ते पर उचकती हुई चप्पल को चटकाते चलते हैं। इनका संस्कार टूटना नहीं थमता, मन की निविड़ शक्तियां स्वप्न में अजीब समाधान ढूंढती हैं। जिनके घरों में 'बायीं ओर के छोटे-ठिगने दरवाजे मसे घुसने से एक पुरानी चांदनी लगी, जिसकी मुंडेर पर बेफिक्री के कारण पानी न देते रहने से, सूखी हुई भूरी तुलसी और अन्य उसी तरह के पौधे कुण्डों में लगे हुए थे, जो हरियाली के अभाव में जंगली परित्यक्त और वीरानी की निशानी से प्रतीत होते थे। वहीं खाटें पड़ी हुई थी जिनपर मैले व फटे हुए बिस्तर इकट्ठे भी नहीं किए गये थे।'[1]

उन्हें ग्लानि होती है तो वह भी 'वर्गीय ग्लानि'। अपने ही वर्ग के पाप बोध का चित्रण मुक्तिबोध करते हैं 'एक विस्तृत,शान्त, खुलापन युवक को ढंक रहा था और उसे सिर्फ अपनी आवाज़ सुनाई दे रही थी-- पाप, हमारा पाप, हम ढीले-ढाले सुस्त मध्यवर्गीय आत्म-सन्तोषियों का घोर पाप। बंगाल की भूख हमारे चरित्र विनाश का सबसे बड़ा सबूत। उसकी याद आते ही जिसको भुलाने की तीव्र चेष्टा कर रहा था, उसका हृदय कांप जाता था और विवेक भावना हांफने लगती थी।'[2]

---

1- मुक्तिबोध रचनावली:3 : जिन्दगी की कतरन : पृष्ठ-76

2- मुक्तिबोध रचनावली:3 अंधेरे में: पृष्ठ-94

उनकी 'अधूरी कहानी सात' के पात्र की गठरी में क्या है ? "उसमें अभी गुज़र गई मामी की एक नीली फटी हुई बदरंग साड़ी, एक पुरानी बुढ़ को लगाई लिए सिंगारदान, एक चोली, एक जम्फर, शादी से पहले के बड़े भाई के साथ खिंचवायी हुई दोनों की एक छोटी सी तस्वीर । एक लेनिन की किताब, एक माओ की तस्वीर और एक लड्डू की पुड़िया ।"[1]

मुक्तिबोध की कहानियों का कथ्य पात्र, वातावरण सब उनकी विचारधारा की पुष्टि है । वह शोषण की व्यवस्था के खिलाफ मध्यवर्गीय ज़िरह है । अपने वर्ग के प्रति मुक्तिबोध पूर्णतः ईमानदार रहे हैं । उनके पात्र उनकी जीवन दृष्टि और विचारधारा की सशक्त अभिव्यक्ति हैं ।

---00000---

1- मुक्तिबोध रचनावली:3 : अधूरी कहानी सात : पृष्ठ-369 ।

# पंचम अध्याय

## विशिष्ट कहानियों का विश्लेषण

(क) पक्षी और दीमक।
(ख) विपात्र।
(ग) काठ का सपना।
(घ) क्लॉड ईथरली।
(ङ) सतह से उठता आदमी।

## पक्षी और दीमक

पक्षी और दीमक कहानी की कई पर्तें हैं। कथा के भीतर कथा से उत्पन्न सत्य आज के समाज और व्यक्ति के मध्य हो रहे गलत सौदों पर तेज प्रकाश डालता है। नायक खिड़की से भीतर आने वाले साँप से बचने का उपाय जानता है, वह अपनी सहायक मित्र श्यामला के व्यवहार में एक ठण्डा पथरीलापन देखता है। नीले-सपनीले रंगों का श्यामला में अभाव है यही अभाव उसके अपने भीतर गहरी कमी को महसूस कराता है। चिल-चिलाती धूप में स्कूल के मैदान तक जाना उसके दिल में अजीब 'कमोल' पैदा करता है। दिमाग सिकुड़ने लगता है। उस पर नेता को देख वह कतराना चाहता है। भगवे कुर्ते वाले नेता की 'शेवरलेट' में उसे अपनी सूरत भयानक नज़र आती है। 'भयानक है वह सूरत, सारे अनुपात बिगड़ गये हैं। नाक डेढ़ गज़ लम्बी और कितनी मोटी हो गयी है। चेहरा बेहद लम्बा और सिकुड़ गया है, आँखें लट्टूदार। कान नदारद। भूत जैसा अप्राकृतिक रूप। मैं अपने चेहरे की उस विद्रूपता को मुग्ध भाव से कुतूहल से और आश्चर्य से देख रहा हूँ एकटक कि इतने में मैं दो कदम एक ओर हट जाता हूँ और पाता हूँ कि मोटर के उस चमकदार काले आईने में, मेरे गाल ठुड्डी, नाक, कान सब चौड़े हो गये हैं, एकदम चौड़े। लम्बाई एकदम नदारद। मैं देखता ही रहता हूँ कि इतने में दिल के किसी कोने में कोई अँधियारा गटर एकदम फूट निकलता है। वह गटर है आत्मालोचना, दुःख और ग्लानि का।'[1] उनकी आत्मा छटपटा उठती है। 'उस भगवे खद्दर के कुर्ते वाले से मेरा छुटकारा कब होगा, कब होगा।'[2]

---

1- मुक्तिबोध रचनावली :3 : पृष्ठ- 160

2- -- वही --- ,, पृष्ठ- 160

बीस हजार की मांग को अस्वीकार कर बारह हजार की बात करके वह मगरे लदरलुर्त बाले से दुश्मनी मोल लेना नहीं चाहता। मैं उसके प्रति वफादार रहूंगा क्योंकि मैं उसका आदमी हूं। भले ही वह बुरा हो, भ्रष्टाचारी हो, किन्तु उसी के कारण मेरी आमदनी के जरिये बने हुए हैं, व्यक्ति-निष्ठा भी कोई चीज है, उसके कारण ही मैं विश्वास योग्य माना गया हूं। इसीलिए मैं कई महत्त्वपूर्ण कमेटियों का सदस्य हूं।"[1]

वह अपनी मित्र को कथा सुनाता है - पक्षी और दीमक की कथा जो आकाश में खूब ऊंचाई पर अपने दल के साथ उड़ता चला जाता है वह पक्षी नौजवान है, वह अपनी पैनी नजर से पृथ्वी पर दीमक बेचने गाड़ीवान को देख लेता है जो दो दीमक, एक पंख के बदले में बेचता है, पक्षी को दीमक स्वाद लगती है। हवा में उड़ने वाले छोटे-मोटे कीटपतंगों की अपेक्षा सिर्फ धरती पर मिलने वाली यह दीमक उसे आकर्षित करती है। वह बोरों में बिकने वाली उस सुविधा का लाभ उठा सौदा तय करता है एक के बदले दो दीमक। पंख को चोंच में दबा कर खींचने में उसे तकलीफ भी बहुत होती है लेकिन दीमक का स्वाद उसे सहनशीलता प्रदान करता। वह प्रतिदिन गाड़ीवाले से दो दीमक का सौदा करने लगा किन्तु वह अधिक दिन छुप न सका। पिता ने समझाया "बेटे दीमकें हमारा स्वभाविक आहार नहीं हैं और उनके लिए पंख तो हरगिज नहीं दिये जा सकते।" किन्तु पक्षी को कुछ न भाता। दीमक उसकी जरूरत हो गई। धीरे धीरे पक्षी के पंख अल्प होने लगे, उसे ऊंचाइयों पर संतुलन रखना कठिन हो गया, पहाड़ों, चट्टानों, पेड़ों की चोटियों-गुम्बदों और बुर्जों पर हांफते हुए बैठना पड़ता था। उसका दल उसे छोड़ ऊंचाइयों पर उड़ते चला गया, वह पिछड़ गया। फिर भी दीमक का शौक कम न हुआ। वह पंखों से दीमक का सौदा करता रहा।

---

1- मुक्तिबोध रचनावली : 3 : पृष्ठ- 163

आकाश में उड़ना उसे निरर्थक मालूम पड़ने लगा । वह मूर्खों की वस्तु है स्थिति गम्भीर हो चली । उसमें सामर्थ्य शेष न रही और वह फुदकने पर मजबूर हुआ किन्तु दीमकों के शौक ने पीछा न छोड़ा । गाड़ी वाला कभी कभी नहीं भी आता और पक्षी प्रतीक्षा में घुलता रहता । एक दिन उसने स्वयं निर्णय किया कि वह दीमक खोजेगा । वह पेड़ से उतर कर जमीन पर आ गया और दीमकें खोजने लगा । उसे सफलता मिली किन्तु अब वह खाने की बजाय उसे इकट्ठा करने लगा । एक दिन गाड़ी वाले को आता देखा, उसने दीमक के बदले पंख मांगे किन्तु गाड़ीवाले ने उत्तर दिया हंसकर 'बेवकूफ मैं दीमक के बदले में पंख लेता हूं, पंख के बदले में दीमक नहीं ।'[1] अन्त में दीमक की थाली को पक्षी का रक्त सींच गया, बिल्ली पक्षी को खा गई ।

कहानी कह चुकने के बाद एक भयानक प्रक्रिया से लेखक गुजरता है, 'नहीं मुझमें अभी बहुत कुछ शेष है, बहुत कुछ । मैं उस पक्षी जैसा नहीं मरूंगा । मैं अभी भी उबर सकता हूं । रोग अभी असाध्य नहीं हुआ है । ठाट से रहने के चक्कर में बंधे हुए बुराई के चक्कर तोड़े जा सकते हैं । प्राण शक्ति शेष है शेष ।'[2]

इसके बाद एक और घटना घटती है डण्डे पर मरा हुआ सांप लिए कुछ देहाती दिखाई पड़ते हैं और श्यामला कहती है, 'जहां सांप देखो मार डालो फिर वह पनियल सांप ही क्यों न हो ।'[3] संक्षेप में यही पक्षी और दीमक का दोहरा कथानक है, यह कहानी मुक्तिबोध की रचनात्मक अभिव्यक्ति के मूल

---

1- मुक्तिबोध रचनावली :3 : काठ का सपना : पृष्ठ- 166

2- -- वही --- ,, ,, पृष्ठ- 166

TH-5348

बिन्दु को प्रस्तुत करती है । कविता का मूल वक्तव्य बुद्धिजीवी का संकट है जो कहानियों के स्तर पर भी उभरता है । मानव सभ्यता के संकट को कहानियां महसूस करती है , यही भीतरी ताप बन कहानियों को गरमाता है । इसकी सहनशीलता भुलाने वाली गर्मी कभी उसे पागल कर देती है और कभी वह समझौते करने लगता है और कभी कभी कहीं का नहीं रह जाता। डा० सुरेन्द्र प्रताप पक्षी और दीपक को बुद्धिजीवी के संकट रूप में प्रस्तुत करा मानते हैं "पक्षी और दीपक कहानी समझौतावादी मनुष्य के पतनोन्मुख रूप को एक रूपबद्ध कथा को सामने लाती है । पंख देकर दीपक खरीदने वाला पक्षी एक ऐसे ही अभिशप्त बुद्धजीवी का प्रतीक है । समझौतावादी रुख अख्तियार करने पर आदमी किस प्रकार अपनी प्रतिरोधक शक्ति खोता जाता है कहानी इसी ट्रेजडिक स्थिति को व्यक्त करती है । बुद्धिजीवी आसमान में उड़ता है और जमीन पर तब ही आता है जब उसे दीपक खाने की लत लग जाती है । लेकिन उसका जमीन पर उतरना क्रमशः अपने पंख खोते जाना है अन्ततः वह जमीन का रहता है न आसमान का और एक पंखविहीन पक्षी बनकर बिल्ली का शिकार बन जाता है । जमीन और आसमान के बीच संबंध स्थापित करने में बुद्धिजीवी की असमर्थता मूलतः विचार और क्रिया में संबंध स्थापित करने में पाने की असमर्थता का ही दूसरा नाम है । यही वह सबसे बड़ी समस्या है ।"[1] यह कहानी की अनेकार्थी पर्तों की एक सतह है । इसके अलावा भी यह कहानी बहुत कुछ कहती है । एक अकेला व्यक्ति किस सीमा तक किस शर्त पर अपने चरित्र का सरोकार और अपने को भारतीय समाज की असली-शासक सत्ता के सामने जो सत्ता , जो प्रभाव, धन और भ्रष्टाचार की सत्ता है कि समक्ष स्थिर रख सकता है । इस सत्ता के नेता जो नाटा, मोटा भद्दे खद्दर कुरते वाला नेता के रूप में पक्षी और दीपक में सामने आते हैं जो किसी न किसी सांस्कृतिक संस्था के सर्वेसर्वा और अपने

---

1- मुक्तिबोध : विचारक कवि और कथाकार : सुरेन्द्र प्रताप
पृष्ठ- 156

आदमियों के मुखिया हैं, उनके "कृपालु मित्र " सहायक और उनकी आमदनी का जरिया है अत: उनकी वफादारी के हकदार हैं, यही कारण है कथा नायक अपने कृपालु नेता से विरोध लेना नहीं चाहता । वह पिसता है, परन्तु चीख नहीं निकल पाती । आवाज़ हलक में फंसकर रह जाती है । मानसिक क्लेश को भोगता यह पात्र प्रतीकात्मक कथा द्वारा प्रेमिका के समक्ष दु:खद आत्मालोचना स्वीकार करता है और अचानक महसूस करता है कि उसमें अभी शक्ति शेष है वह उस पक्षी के समान नहीं है वह यों नहीं मरेगा । वह उबरेगा क्योंकि अभी रोग असाध्य नहीं हुआ है । ठाट से रहने के चक्कर में बंधे हुए बुराई के चक्कर तोड़ जा सकते हैं । प्राणशक्ति शेष है शेषा"[1] श्यामला ही वह शक्ति है जो आदिवासियों की एक संस्था में काम करने वाली गान्धीवादी कार्यकर्ता की लड़की है "जिसका आदर्शवाद भी पीठे मक्के आदिवासियों की उन कुल्हाड़ियों जैसा है जो जंगल में अपने बदमान और बेवफा साथी का सिर धर से अलग कर देती है जिसमें बारीक सूफियाना अंदाज नहीं, जो सांप को मार डालने में विश्वास करती है ।"[2]

मध्यवर्गीय मनोवृत्ति अपने भीतर के अलगाव के कारण आलोच्य हो उठती है । कहानी का पात्र "मैं" अपनी प्रेमिका के ठोस प्यरीलेपन से टकराता है जो शुरू में उसे बुरा महसूस होता है । वह ठोस बातों की बारीकियों में विश्वास नहीं करता , आखिर मनुष्य को व्यवहार की कसौटी पर परखने से उसे क्या मिलेगा ? उल्टा उसका सु:ख चैन समाप्त होगा । उसे नहीं चाहिए अच्छाई का यह ताज किन्तु उस प्यरीलेपन के आगे उसके अपने भीतर की कोई कमी खटक उठती है । वह अपने भीतर के उग्र आदेश का पालन कर सकता है।उसे मार्ग दिखाते आगे हैं धूलभरी सड़कों को चलने के आदी

---

1- मुक्तिबोध रचनावली :3: पक्षी और दीमक " पृष्ठ-166

2- -- वही -- :3: पक्षी और दीमक " पृष्ठ- 167

विवाहयों परे कदम "वह महसूस करता है कि " हमारे आलस्य में भी एक छिपी हुई जानी अनजानी योजना रहती है ।[1] इसी आलस्य को त्यागने के बाद सच्चाई प्रकट होती है । होटल या विश्व विभाग के बाहर किसी पेशाबघर के पास मुट्ठियां गरम करने से ग्राण्ट जल्दी मंजूर होता है, यह तथ्य हाथ आता है परन्तु यह भी अपने हाथ में नहीं टिकता । इसका बहुत बड़ा हिस्सा बड़े ही तरीके से सार्वजनिक संस्थाओं के संचालकों की जेब में चला जाता है । जब इस सत्य से साक्षात्कार होता है तब विवेक भावना कचौटती है । आत्मालोचन दुख और ग्लानि की अंधियारी गटर की बदबू से छुटकारे की पुकार उठती है और बेबसी की प्रक्रिया में फंसा मनुष्य सोचता है, "दैत्याकार मशीन जिसमें पैर पिंच गये हैं, पसलियां चूर हो गई हैं, कब छुटकारा होगा ? वह अपनी कमजोरी स्वयं जानता है कि वह कार्यहीन है आलसी है इसलिए वह घट रहा है उसका क्षय हो रहा है । वह आत्मरक्षा की दीमकों का लोभी है । इसका बोध होते ही एक भावना जन्म लेती है कि वह अभी मरना नहीं चाहता, उसमें अभी बहुत कुछ शेष है । वह आदर्शवादियों का आदर्शवाद कि जहां-सांप देखो मार दो " से शिक्षा लेता है और अन्त में स्वीकार करता है वह अब श्रम नहीं करेगा । हीन भावना को स्वीकार नहीं करेगा , कर्मठ हो कर्म करेगा । पक्षी और दीमक की कहानी के माध्यम से वर्ग की साई और एक वर्ग का दूसरे वर्ग की ओर स्वभाविक - अस्वाभाविक आकर्षण से उत्पन्न दुःख भी प्रकट होता है । पक्षी मध्यवर्गीय प्रतीक है जो उच्चवर्गीय स्तर की उन तमाम सुविधाओं को प्राप्त करना चाहता है, जैसे भी और परिणाम स्वरूप गलत समझौते करता है, गलत सौदा करता है वह अपना सर्वस्व अपनी उड़ने की क्षमता(पंख) के बदले जमीन की दीमक खरीदता है यह सुविधा उसे तभी तक मिलती है जब तक उसके पास पूंजी है (पंख है ) किन्तु दूसरा वर्ग शोषक है, वह व्यवसायी है, वह पंख

---

1- मुक्तिबोध रचनावली :3 : काठ का सपना : पृष्ठ-22

के बदले मैं दीमक बेचता है दीमक के बदले पंख नहीं । ऐसे आकर्षण और ऐसी सौदेबाजी का अन्त अपने अस्तित्व से हाथ धोना है स्वयं को बिल्ली का शिकार बनाना है । पक्षी और दीमक कहानी मुक्तिबोध की प्रौढ़ समझ की कहानी है प्रतीक के माध्यम से वह अपने वर्ग को अपने नैतिक मूल्यों के बदले में उच्च वर्ग की सुविधाओं को खरीदने से रोकते हैं जिसका 'अन्त दु:खद और त्रासद है ।

## विपात्र

'विपात्र ' मद्रता ' से ग्रस्त निम्नमध्यवर्गीय जीवन के आचरण की कथा है । मद्रता से ग्रस्त यह मध्यवर्गीय चरित्र किसी दूसरे 'अपने बड़े ' की हू-ब-हू नकल कर रहे हैं उन्होंने अपने जाने अनजाने किसी बड़े आदमी के रास्ते पर चलना मंजूर किया है । उनके हाथों में फूल इसलिए नहीं है कि उन्हें वे प्यारे हैं, बल्कि इसलिए कि उनका आराध्य व्यक्ति बागबानी का शौकीन है और दूर आहाते के पास कहीं वह खुद भी फूलों को डण्ठलों सहित चुन रहा है ।[1] जगत नफ़ीस और कीमती पोशाक पहनने वाले गम्भीर मुद्राओं के प्रति आकर्षित , अपनी ही दुनिया में गुम एक व्यक्तित्व है जो मध्यवर्गीय मानसिक लीला में रत नौजवान का एक पक्ष है वह अकेले अन्धेरे में पड़े रहता है । बाहर कम निकलता है बाहर की दुनिया उसे अजनबी मालूम होती है । मानसिकता से वह कैलिफोर्निया या हार्वर्ड युनिवर्सिटी के इलाकों में घूमता रहता है । अमरिकी साहित्य से प्रभावित इस युवक के जीवन स्वप्न कार्ल सैण्डबर्ग जैसे व्यक्तियों द्वारा प्रदान किए गये हैं । उसके स्वप्न में सैन्फ्रांसिसको के किसी कालेज में वाल्ट व्हिटमैन पर भाषण देते हुए चित्र रहते हैं । जगत इससे बेवकूफ सिद्ध होता था लेकिन इसलिए नहीं कि उसके पास यूरोपीय साहित्य का ज्ञान था बल्कि इसलिए क्योंकि वह अन्य नागरिकों के समान नहीं था और 'निरर्थक ज्ञान ' में डूबा रहता था, सिर्फ वक्त की बरबादी करता और किसी भी

---

1- मुक्तिबोध रचनावली :3: विपात्र : पृष्ठ- 225

ऊंचे ओहदे तक नहीं पहुंच पाता था । वह बेवकूफ इसलिए था क्योंकि वह कैरियर नहीं बना सकता था क्योंकि उसमें सामाजिक क्षेत्र में घुसने और पैठने की शक्ति बिल्कुल नहीं थी । उसे विभिन्न प्रकार के विभिन्न स्वभाव और व्यक्तिगत इतिहास रखने वालों का अनुभव नहीं था । वह 'मनुष्यता' पर सहज विश्वास कर जाने वाला 'बेचारा युवक' था, जिसे यह भी पता नहीं चलता था कि लोग उस पर क्यों हंस रहे हैं । उसके पास स्पष्ट राजनीतिक दृष्टिकोण नहीं था ।'[1]

राव साहब 'महाकाव्य' के वीरोदात्त नायक की भांति ही धर्म बुद्धि कर्तव्यपरायणता और दयाशीलता की सुशिल्पित मूर्ति थे ।'[2] उनको मंजिल पर पहुंचने के नुस्खे मालूम हैं वे अवसरानुसार व्यवहार करते हैं मौका आने पर 'पवित्र नियमों' में जरा सा बदलाव 'कर काम निकाल सकने की सामर्थ्य उनमें थी । ज्ञान को वे मोक्ष का साधन, मुक्ति का सोपान नहीं समझते वरन् भौतिक लक्ष्यपूर्ति का साधन मानते हैं । ज्ञान की प्राप्ति यदि कीर्ति, प्रतिष्ठा ऊंचा पद आदि के हस्तेमाल में न लाई जा सके तो उसका अर्थ उनके लिये कुछ नहीं है । इसीलिए जगत और राव साहब में आपस में नहीं बनती ।

मिस्टर भगवत 'बॉस' के अहसान तले दबे हैं किन्तु फिर भी वह गन्दे होटल की चाय पीते हुए बॉस की कठोर निन्दा करते हैं । अपने बाप से इन्होंने तिजारत के सब गुण सीखे हैं किन्तु तराजू की जगह इन्होंने हाथ में राजनीतिशास्त्र में एम० ए० की डिग्री ली और लोअर डिवीजन क्लर्क बनकर बगावत की और बाद में विद्या केन्द्र में अध्यापक हो गये ।

---

1- मुक्तिबोध रचनावली :3: विपात्र : पृष्ठ- 231

2- -- वही -- ,, पृष्ठ-228

सुनहरे चेहरे वाला यह आदमी बड़ा फक्कड़ है । वह मध्यवर्गीय जनता से उनकी लोक भाषा में बात करता है । वह मारवाड़ी है । यही नहीं वह समाजशास्त्री और राजनीतिशास्त्री भी है । शहर की समाजशास्त्रीय लोक प्रक्रिया की ओर भी वह संकेत करता है " यह मिक्सड ब्लड (वर्ण संकर है, मेस्टिज़ो (दक्षिण अमरिका के वर्ण संकर के समान है ) है ।"[1]

ये सब चरित्र "विद्याकेन्द्र " को घेरे हुए हैं जिसका प्रभुत्व बांस के पास है वे विद्या केन्द्र के सर्वे सर्वा हैं । इन सब लोगों की देखभाल सहायता वह खुले दिल से करते हैं केन्द्र की सेवा के बदले वे पैसा नहीं लेते बल्कि उसके कर्मचारियों को यथाशक्ति सहायता ही देते हैं । ये बांस उपकार करने की शक्ति रखते हैं लोगों पर अहसान कर उन्हें कठपुतली बनाना इनका पसन्दीदा खेल है । ये कायदे के पाबन्द हैं । कानून के अनुसार कार्य करते हैं, ये कई शक्ति सम्पन्न लोगों के मसलन (भूतपूर्व मुख्यमंत्री ) मित्र रहे हैं अत: अधिकारी वर्ग पर इनका खासा रौब है अर्थात् शहर के प्रभावशाली और शक्तिशाली लोगों में इनकी गिनती है, यह तो हैं इन बांस का सामाजिक सन्दर्भ, अब विद्या केन्द्र के सन्दर्भ में भी इनकी चर्चा की जानी चाहिए ताकि इनके समूचे व्यक्तित्व को समझा जा सके । पत्नी की मृत्यु के पश्चात दो बच्चों के बाप होने पर भी वह अकेले है और सम्वेदनशील हो गए हैं । इतने संवेदनशील कि आदमी को सूंघकर उसकी पहचान बता देते हैं । अपना वक्त काटने की समस्या वे विद्याकेन्द्र के कर्मचारियों के साथ बैठकर सुलझाते हैं । ये "राजा आदमी " सबसे प्रेम करता है किन्तु उनके प्रेम में "शासकवर्ग की तानाशाही थी, प्रेम का अधिनायकत्व। इस प्रेम के अधिकार से वे दूसरों का जीवन निर्माण करने में लगाने लगे थे । वे अपने लोगों का खास ख्याल रखते । उनकी कोशिश होती कि वे लोग सर्वोच्च वर्ग में गिने जाएं " इसलिए वह इसे

---

1- मुक्तिबोध रचनावली :3 : विपात्र : पृष्ठ- 241

अपना कर्तव्य समझ उनकी चाल-ढाल कपड़े लत्ते, यहाँ तक कि उनकी गतिविधियों पर भी नज़र रखते हैं इन्हीं असलानों और प्रेम से दबकर हर कोई व्यक्तिगत रूप से वांस को प्रसन्न करना चाहता है । दरबार का हर सदस्य दूसरे सदस्य से कटा हुआ है । ये सब बेमेल बेढ़ी और बेजोड़ हैं जिन्दगी कैसे जिएं इसके लिए सब पास अपने अपने नज़रियात हैं अपने - अपने अकेलेपन को भरने के लिए मसालेदार गप्पबाजी का सहारा लेते हैं फिर भी ये सब अजीब कैद में गिरफ्तार अपने को विफल अनुभव करते हैं । विद्यानुराग इस विद्याकेन्द्र में किसी को नहीं । छिरी वे इसलिए लेना चाहते हैं ताकि अगली सीढ़ी पर चढ़ सकें । लेखक स्वयं इस मण्डली पर टिप्पणी करता है ।"हम सब नौजवान थे, कई उपाधियों से विभूषित थे, अपने विषय के आचार्य मान जाते । एक तरह से हम भोले थे, सरल हृदय भी, हम किसी के दुःख से पिघल भी सकते थे : सहायता भी करते थे लेकिन हम में सामाजिक चेतना नहीं थी, क्योंकि असल में हम हराम खोर थे । और बड़ा यह कि वैसे व्यक्तिशः हम बुरे भी नहीं थे । भलेमानस थे । अच्छे आदमी कहलाते थे । अच्छा आदमी वह होता है जिसकी बुराइं ढकी रह जाती हैं -- चाहे आप से आप, चाहे किये-कराये से । हम ऐसे ही भले मानस थे ।"[1]

इन पात्रों के अलावा विपात्र में एक अलग राष्ट्र की भी चर्चा की गई है जो अपने श्यामल वर्ण समुदाय का है,जो अपने ढंग से सोचता है । यह समुदाय उच्चवर्गीय पुरुषों और निम्नवर्गीय स्त्रियों की संतान है । इनके मुहल्लों और गांवों में इनके अपने लीडर हैं, जिनसे समय पड़ने पर वोट के लिए राजनीतिक पार्टियां सम्पर्क करती रहती हैं और जीतने के बाद उन्हें उपेक्षित समझकर भूल भी जाती हैं । यह राष्ट्र पढ़ मध्यवर्ग के बिके लोगों के लिए 'डिसरेप्यूटेबल' है । लेखक की पीड़ा इस रेप्यूटेबल और डिसरेप्यूटेबल' के बीच

---

1- मुक्तिबोध रचनावली :3: विपात्र : पृष्ठ-241

घिसने पर उभरती है । वह विद्याकेन्द्र में नौकरी करने को बाध्य है क्योंकि उसके पास अपनी भौतिक बाह्य जीवन की समस्याओं को हल करने का अन्य कोई उपाय नहीं है । सात बच्चे और बूढ़े माँ-बाप को पालने के लिए उसे यह सब स्वीकार करना ही है । वह निश्चिंत है किन्तु उसके भीतर का संघर्ष तीव्र हो उठा है । वह अपनी स्वतंत्रता पर दबाव महसूस करता है । इस दबाव से उसका दम तो नहीं निकलता किन्तु घुटन बहुत होती है । कभी कभी वह असह्य हो उठती है । वह बॉस के मनबहलाव का कारण नहीं होना चाहता [illegible] उनकी खेल बनना उन्हें पसंद नहीं । अपनी स्वतंत्रता के प्रति सचेत लेखक को छात्र की प्रेमिका भी इसी रूप में नागावार लगती है । इस प्रकार की व्यवस्था जहाँ व्यक्तिगत स्वतंत्रता न हो उससे समझौता करना उसकी मजबूरी हो, जो बेहद त्रास उत्पन्न करती है । "आजादी उनके पास है जो साधन सम्पन्न हैं सच्ची आजादी उन्हें हैं, जिनके पास पैसा है । वे पैसों के बल पर दूसरों की स्वतंत्रता खरीद सकते हैं ।"[1]

प्रश्न यह उठता है कि जब यह मध्यवर्ग इन सच्चाइयों को जानता है तब वह क्यों बिकता है ? यही मध्यवर्ग का पौरुष है जो स्वयं को बेचते बेचते एक दिन नपुंसक हो उठता है, उसका क्रोध उसका विद्रोह क्रमश: सब इसी विशेषण के तहत आते हैं । क्योंकि इन्हें पेट पालने हैं इसलिए यह श्रम के साथ-साथ अपना संघर्ष स्वातंत्र्य, विचार-स्वातंत्र्य और लिखित-अभिव्यक्ति-स्वतंत्र्य भी बेच देते हैं । यदि इनसे बढ़कर यह कभी अपने स्वतंत्र्य का प्रयोग करेंगे तो इनके पेट पर लात मार दी जाएगी अत: यह सब पूंछ हिलाते हैं हालांकि पूंछ हिलाने की शैलियां सब की अपनी अलग-अलग हैं अपने बॉस के सामने जाकर अपने को तुच्छ मान कर उनके सामने नत होते जाते हैं । यह अपने वर्ग में बने रहना चाहते हैं, उच्च बने रहने के लिए किन्तु परिणाम क्या होता है ?

---

1- मुक्तिबोध रचनावली :3: विपात्र : पृष्ठ- 245

"हमें अपने वर्ग में रहने का मोह है निचले वर्ग में जाने से डर लगता है लेकिन क्रमशः हमारी स्थिति गिरते गिरते उन जैसी ही होती जाती है... तो वहां सहर्ष ही क्यों न पहुंच जायें। लेकिन वहां भी मुक्ति नहीं है, क्योंकि उस स्थान पर उत्पीड़न घोरतर है।"[1] आदमी आदमी के बीच फासले बढ़ते जाते हैं उनके बीच भेदों के दलदल हैं उन्हें पार कर पाना संभव नहीं हो पाता। यह लोग नपुंसक हो गये हैं स्वयं अपनी जननेन्द्रियों को काटकर। नपुंसकता संत बने रहने के लिए ? यानी "खीलाई। शिखण्डी सन्त जिसने अपनी जननेन्द्रियों को चाकू से काट दिया था। सन्त बने रहने के लिए।"[2]

"विपात्र" का यह सूक्ष्मनिरीक्षण पात्रों और कथानकों के मध्य कम और छोटी बड़ी बहसों के मध्य ज्यादा उभरा है। भीतर एक उथल-पुथल है। एक बहस चलती है स्वयं से दूसरे से। भीतर का छिछलापन बाहर छलक उठता है। जानते हुए भी कोई ठोस कदम उठाना नहीं चाहता क्योंकि स्वयं को सब किसी न किसी अर्थ में मूल्यवान समझते हैं। इन लम्बी बहसों और स्वकथन से कुछ सारगर्भित अवधारणाएं बनती हैं "कोई भी व्यक्ति चाहे जितना भी आत्मालोचन कर सकने में सामर्थ्य रखता हो, वह अपने "स्व" द्वारा निजै का परिष्कार और विकास नहीं कर सकता। मुक्ति अकेले में अकेले की नहीं हो सकती। मुक्ति अकेले में अकेले को नहीं मिलती।"[3] तब लेखक उस खतरनाक नसैनी को ही तोड़ देना चाहता है जो सबसे ऊपरी सीढ़ी के व्यक्ति को यह सोचने पर बाध्य करती है कि निचली सीढ़ी वाले लोग उनसे नीचे हैं, हीन हैं।

---

1- मुक्तिबोध रचनावली :3 : विपात्र : पृष्ठ-243

2- -- वही -- ,, पृष्ठ- 255

3- -- वही -- ,, पृष्ठ- 256

यह मध्यवर्ग जो कलाकार वर्ग भी है उनकी रचनात्मक शक्ति बंजर हो उठती है क्योंकि, उसकी आत्मा एक ऐसी जननेन्द्री है जिसकी तिजारत होती है ' वह मानवीय स्तर पर जिन लोगों के बीच रहता है उनसे मिलने पर विवश है । इस वर्ग का आत्मप्रकटीकरण बहुत अंशों में वस्त्र प्रधान है । वास्तविक आत्मोद्घाटन नहीं । इसलिए उसे विवश होना पड़ा है 'उत्पीड़ित जनता से घृणा करने को । इससे बॉस द्वारा चलाए वियाकेन्द्र की रक्षा होती है । वह इन फासलों को सत्य करना चाहता है । इसलिए उन्हीं के मध्य रहना चाहता है । आइ वान्ट टू बी इन द थिक आफ थिंग्स ऐंड मिडे ड्राइड टू बी । यस इन द थिक आफ थिंग्स '[1] विपात्र बाह्य दुनिया और भीतर की मानसिकता के संबंधों से उत्पन्न जटिल जीवनानुभव को प्रकट करती है । डा० चन्द्रकान्त वान्दिवडेकर ने विपात्र की व्याख्या करते हुए ठीक ही लिखा है : 'विपात्र में एक स्तर पर अपने-आपको तलाशते तराशते जाने की आत्मावलोकन और आत्मालोचन की धार-दार प्रवृत्ति है जो बौद्धिकता को रसात्मकता प्रदान करती है जो दूसरी ओर जीवन सत्यों को सामने रखकर हमारी समझ को विस्तृति देने की संवेदनात्मकता भी प्रखर रूप में प्रकट हुई है । विपात्र मध्यवर्ग की मजबूरियाँ, कमजोरियाँ और दुर्बलताओं का उद्घाटन करती जाती है । किन्तु इसकी व्यंग्यात्मकता महज आघात करने वाले हिंसक व्यक्ति की निषेधात्मकता का जहर नहीं उगलती, न दूसरों पर आक्रमण कर आत्मसंतोष करने वाले की आत्मबद्ध अहमता चूंकि लेखक स्वयं अपनी नपुंसकता के दर्शन करते हुए आत्मग्लानि से विद्ध है । उसके व्यंग्य को एक ऊंचा स्तर मिलता है । मानवीय सार्थक संबंधों की तलाश व पहचान के लिए व्याकुल आत्मा से विपात्र में जो साक्षात्कार होता है, वह पाठक को उदात्त भूमि पर ले जाता है ।'[2]

---

1- मुक्तिबोध रचनावली :3 : विपात्र : पृष्ठ-280

2- आलोचना: जुलाई - सितम्बर 1976 : पृष्ठ 44 : चन्द्रकान्त वान्दिवडेकर

संक्षेप में विपात्र मुक्तिबोध की प्रौढ़तम रचनाओं में से एक है जीवनानुभव और पैनी दृष्टि के कारण अपने वर्ग के भयानक सत्य का उद्घाटन मुक्तिबोध 'विपात्र' के माध्यम से करते हैं। यह वर्ग अपनी सृजनात्मक ऊर्जा का सौदा करता है और इसी अर्थ में वह नपुंसक हो उठता है। कथानक के अभाव में भी निःसन्देह 'विपात्र' का कथ्य बेजोड़ है।

## काठ का सपना

'काठ का सपना' में मध्यवर्गीय जिन्दगी में पारिवारिक दुरावस्था के प्रति कर्तव्यपालन न कर पाने के कारण उत्पन्न निष्क्रियता की कथा कही गई है। यह उस मध्यवर्ग का चित्र है जहाँ, ख्यालों से माथे का दुःखना नहीं थमता, देह की थकन दूर नहीं होती, असंतोष की आग और बेबसी का धुंआ दूर नहीं होता।[1] इन परिस्थितियों की छाप उनके चेहरे पर भी पड़ी है। 'पीली मिट्टी का सा चौड़ा चेहरा। उस पर काले कोयले के से दाग। कोई पूरा जलाती हुई-बु-भरी, धुंआती मैली आग जो मन में है और कभी कभी सुनहरी आंच भी देती है पूरा सनीचरी रूप।'[2] पिता की अक्षमता, थकावट उसे अपने प्रति पश्चाताप में विवश करती है। उनके मन में स्वप्न पलते हैं अपनी दुबली पीले चेहरे, फटी हुई फ्राक पहने और दुबले हाथों वाली बालिका सरोज को वह उसके सुनहरे भविष्य तक पहुंचाना चाहते हैं, 'सामने अंधेरे में रंग-बिरंगी पर धुंधली आकृतियां तैर जाती हैं। सुन्दर चेहरे वाली, एक लड़की है, वह उनकी सरोज है। नारंगी साड़ी है, सुनहरी किनारा है, सफेद बम्बई ब्लाउज है। गले में हार है। हाथों में रंग-बिरंगी चूड़ियां--एक-एक दर्जन। पति के घर से वापस लौटी है। खुश है, दामाद

---

1- मुक्तिबोध रचनावली:3: पृष्ठ-190 'काठ का सपना'

2- -- वही -- ,, पृष्ठ-187 ,,

मैकेनिकल इंजीनियर है, उसकी गरीब सूरत है और वह बाहर बरामदे में बैठा है । क्या करे सूझता नहीं ।"[1] वह सबको प्रसन्न करना चाहते हैं , सारी दुनिया को परन्तु तभी स्वप्न टूट जाता है । एकमात्र बालिका को देख वह चौंक उठते हैं इसलिए नहीं कि उन्हें उससे स्नेह नहीं बल्कि इसलिए कि वह बालिका उन्हें पिता का कर्तव्य याद दिलाती है जिसे पूरा कर पाने में वे असमर्थ हो उठे हैं ।" उसके पिता अपनी बालिका को देख प्रसन्न नहीं होते हैं विक्षुब्ध हो जाते हैं , उनका मन नन्हीं बालिका सरोज का पीला चेहरा, तन से फटा हुआ , सिर्फ एक फ्राक और उसके दुबले हाथ उन्हें बालिका के प्रति अपने कर्तव्य की याद दिलाते हैं ऐसे कर्तव्य की जिसे वे पूरा नहीं कर सके, कर भी नहीं सकेंगे, नहीं कर सकते थे । अपनी असमर्थता के बोध से चिढ़ जाते हैं"[2] दूसरे ही पल वे अपने क्रोध पर लज्जित होते हैं उनका मन गले लगाता है । बच्ची को वे पुचकारते हैं । यह निष्क्रियता पति पत्नी के संबंधों को निःचेष्ट कर देती है ।"दोनों एक दूसरे से कुछ कहना चाहते हैं, कहना आवश्यक है । किन्तु वे जानते हैं कि दोनों को मालूम है कि उन्हें एक दूसरे से क्या कहना है । उस पूर्व ज्ञान को वे कहना सुनना नहीं चाहते । वह पूर्व ज्ञान वेदना पूर्ण है इसलिए उसे न कहना ही अच्छा है ; फिर भी न कहने से काम नहीं बनता क्योंकि कह सुन लेने से अपने अपने निवेदनों पर सील लग जाती है । वह व्यक्तिगत मुहर अभी लगी नहीं है । हर एक उत्तर , हर एक ज्ञान है फिर भी बहुत कुछ अज्ञात छूट जाता है ।"[3] किन्तु यह सब विचार भी उन्हें क्या देते हैं आखिर ? मनःस्थितियों की विकृति और दुर्दमनीय चिन्ता से ग्रस्त रात्रि जागरण ? केवल वही नहीं उनकी पत्नी भी बैंक है उन दोनों के मध्य की निष्क्रियता में एक अलाव है एक भीतरी अलाव है , अलाव में विरोध है, विरोध में आलोचना है , आलोचना

---

1- मुक्तिबोध रचनावली :3: काठ का सपना : पृष्ठ- 188

2- मुक्तिबोध रचनावली :3 : काठ का सपना : पृष्ठ- 188

3- मुक्तिबोध रचनावली :3: काठ का सपना : पृष्ठ- 190

आलोचना में करुणा है । आलोचना पूर्णत: स्वीकारणीय है क्योंकि उसका संकेत कर्तव्य कर्म की ओर है जिसे इस पुरुष ने कभी पूरा नहीं किया । वह पूरा नहीं कर सकता । यह सारी स्थिति एक मध्यवर्गीय निष्क्रियता को उभारती है जिसके मध्य अलगाव काम करता है पुरुष कुछ कर पाने पाने में असमर्थ है । वह बार-बार प्रतिज्ञा करता है स्वयं को वचन देता है कि वह अवश्य कुछ करेगा वह कल विजयी लौटेगा, वह अपना कर्तव्य कर्म पूरा करेगा । किन्तु वह केवल उसके संकल्प द्वारा नहीं हो सकता । उसके लिए और भी कुछ चाहिए ' उस उष्मा के अभाव में वह नि:चेष्ट हो जाता है, उसकी संवेदनाएं उसे जकड़ लेती हैं । अपनी स्त्री के होठ उसे गुलाब की पंखुड़ी के समान लगते हैं और कपोल मिट्टी की तरह - भुसभुसे नमकीन, शुष्क मृत्तिका से । यह भाव उसमें करुणा उपजाता है । मन जागृत होता है इस अगतिमय जीवन ने उन्हें विराम चिह्न सा घोषित कर दिया है । वह काठ के लट्ठे हो गए हैं जिनमें जीवन के तत्व खो गए हैं । वह फिर भी स्वप्न देखता है 'दोनों स्त्री पुरुष के जीवन पर विराम का पूर्ण चिह्न लग गया है, काठ हो गये हैं । बाढ़ आती है । किनारे पर पड़े इन काठों को बहाकर ले जाती है । जल-विप्लव है । काठ बहते जाते हैं, फिर भी वे प्राणहीन काठ आपस में गुथे हुए बहे जा रहे हैं । बादल तूफान के कारण पेड़ गिरने हो रहे हैं । पर वे गुथे हुए बहे जा रहे हैं, बढ़े जा रहे हैं -- और, हां, गुथे बंधे काठ खाली नहीं है । उन पर एक बालिका बैठी हुई है हां वह सरोज है । अपने नन्हें दो हाथ उसने दोनों काठों पर टेक दिये हैं जिनके सहारे वह स्वयं चली जा रही है ।'[1] यह बोध नव सत्य बोध है जो काठ के लट्ठों को सार्थकता प्रदान करता है उन्हें कर्तव्य का भान कराता है उनकी निष्क्रियता के बावजूद उन्हें क्रियाशील होने का संकेत देता है । भविष्य के प्रति सचेत करता है ।

---

1- मुक्तिबोध रचनावली : 3 : काठ का सपना : पृष्ठ- 191

## क्लॉड ईथरली

क्लॉड ईथरली मानवता के संकट की कथा है । वह अन्तरात्मा की आवाज़ है । अमानवीय कृत्यों के विरुद्ध अपनी आत्मा को दबाकर जीने वाले लोगों की कथा ही क्लॉड ईथरली की कथा है । क्लॉड ईथरली फैंटसी शिल्प की उपज है । मुक्तिबोध की प्रतिनिधि कहानियों में 'क्लॉड ईथरली ' कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से प्रौढ़ रचना है । मोतीलाल वर्मा के अनुसार "क्लॉड ईथरली कहानी में, अमानवीय कृत्यों, जघन्य अपराधों पापाचारों के विरुद्ध, आत्मा की जिस आवाज़ का आग्रह निहित है, वह निता- नितान्त लौकिक एवं वास्तविक भावभूमि पर अवस्थित है । इसका नैतिक लक्ष्य हमारी उस उदासीनता को बाँधता है जो अमानवीयताओं की जलती पीड़ाओं को अनुकूल कर देती है उनके प्रति हमारे भीतर एक अलगाव बनाए रखती है ।"[1] मुक्तिबोध ने कलाकार होने के नाते क्लाड ईथरली की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम से सजग सचेत जन की कुचली आत्मा की आवाज़ को ध्वनित किया है । यह किसी व्यक्तिविशेष की कथा नहीं वरन् समस्त सभ्यता के जागरूक संवेदनशील आत्माओं का परिणाम है । यह क्लाड ईथरली पागलखाने में डाल दिया जाता है जिसकी दो पीली स्फटीक सी तेज़ आँखें और लम्बी सलवटों भरा तंग भौतिया चेहरा है जो ठीक उन्हीं ऊँचे रोशनदानों में से 'भीतर से बाहर, पार जाने के लिए मानो अपनी दृष्टि केन्द्रित कर रहा है ।"[2] यह व्यक्ति क्लाड ईथरली है इस बात का रहस्योद्घाटन जाना उचक्का जिसमवाला सी०आई०डी० करता है जिसके जानापन में भी कोई ईश्वरीय अर्थ दिखाई पड़ता है और यह

---

1- मुक्तिबोध का गद्य साहित्य : मोती राम वर्मा : पृष्ठ-56

2- मुक्तिबोध रचनावली : 3 : क्लाड ईथरली : पृष्ठ-172

'जाना' खास मानी रखता है, इस व्यक्ति में दिलचस्पी बढ़ती है क्योंकि वह रहस्योद्घाटन करता है। वह लेखक और पागल में अन्तर स्पष्ट करता है 'जो आदमी आत्मा की आवाज़ कभी कभी सुन लिया करता है और उसे बयान करने उससे छुट्टी पा लेता है वह लेखक हो जाता है। आत्मा की आवाज़ को लगातार सुनता है और कहता कुछ नहीं है वह भोला-भाला सीधा-सादा बेवकूफ है। जो उसकी आवाज़ बहुत ज्यादा सुना करता है और वैसा करने लगता है, वह समाज विरोधी तत्वों में यों ही शामिल हो जाया करता है। लेकिन जो आदमी आत्मा की आवाज़ जरूरत से ज्यादा सुनकर हमेशा बेचैन रहा करता है और उस बेचैनी में भीतर कैदखाने का पाल करता है वह निहायत पागल है। पुराने ज़माने में सन्त हो सकता था। आजकल उसे पागलखाने में डाल दिया जाता है।[1]

क्लॉड ईथरली कौन है? क्लॉड ईथरली वह अमरिकी विमान चालक था जिसने हिरोशिमा पर बम गिराया था। अमरिकी व्यवस्था उसे महानकार्य समझती थी किन्तु क्लॉड ईथरली ने स्वयं को पापी घोषित किया क्योंकि उसकी विवेक भावना उसे अशान्त बनाती रही थी। उसकी बेचैन आत्मा की इस अभिव्यक्ति को पागलपन घोषित किया गया और उसे टेक्सास प्रान्त में वाको नामक स्थान में स्थित पागलखाने में डाल दिया गया। क्लाड ईथरली अणु युद्ध का विरोध करने वाली आत्मा की आवाज़ है वह मानसिक रोगी नहीं है।' आध्यात्मिक अशांति का आध्यात्मिक उद्विग्नता का ज्वलन्त प्रतीक है।'[2] यह क्लॉड ईथरली उस जागरूक सचेत सजग व्यक्ति का प्रतीक भी है जो अपनी अन्तरात्मा की आवाज़ सुनता है। गलत के प्रति विद्रोह करता है। वह आत्मा की आवाज़ को अभिव्यक्त नहीं कर पाता किन्तु महसूस

---

1- मुक्तिबोध रचनावली :3: क्लाड ईथरली : पृष्ठ- 176

2- -- वही -- ,, पृष्ठ- 176

करता है । वह उपेक्षा भी सहता है किसी न किसी अर्थ में व्यक्ति कहीं नकहीं गलत को अनुभव अवश्य करता है किन्तु वह कुचलता है स्वयं को । अपने विद्रोही और पवित्र विचारों की उपेक्षा करता है लेखक इसे भी पागलखाने की संज्ञा देता है " हमारे अपने - अपने मन हृदय मस्तिष्क में ऐसा ही एक पागलखाना है जहाँ हम उन, उच्च, पवित्र और विद्रोही विचारों और भावों को फेंक देते हैं "जिससे कि धीरे-धीरे या तो वे खुद बदलकर समझौतावादी पोशाक पहन सभ्य भद्र हो जायें, यानी दुरुस्त हो जायें या उसी पागलखाने में पड़े रहें ।"[1] किन्तु क्लाड ईथरली तो अमरिका में है तब वह हि हिन्दुस्तान में कैसे ? अमरिका हिन्दुस्तान के हर बड़े नगर में है वहाँ के लोग वैसे ही जीने की चेष्टा करते हैं वैसा ही व्यवहार करते हैं ।" भारत के हर बड़े नगर में एक-एक अमरिका है । तुमने लाल ओठ वाली चमकदार, गोरी सुनहरी औरतें नहीं देखी उनके कीमती कपड़े नहीं देखे ? शानदार मोटरों में घूमनेवाले अतिशिक्षित लोग नहीं देखे ? नफीस किस्म की वेश्यावृत्ति नहीं देखी ? सेमिनार नहीं देखे ? एक जमाने में हम लण्डन जाते थे और इंग्लैण्ड रिटर्न्ड कहलाते थे । और आज वाशिंगटन जाते हैं । अगर हमारा बस चले और आज हम सचमुच उतने ही धनी हो और हमारे पास उतने ही एटमबम और हाईड्रोजन बम हो और राकेट हो तो फिर क्या पूछना "[2] । साम्राज्यवादी अमरिका के साथ संस्कृति और आत्मा से जुड़ने वाले इस देश में क्लाड ईथरली क्यों नहीं हो सकते ? " उनकी संस्कृति हमारी संस्कृति है उनकी आत्मा हमारी आत्मा और उनका संकट हमारा संकट है -- जरा पढ़ो अखबार, करो बातचीत अंग्रेजीदां फर्राटेबाज लोगों से । तो हमारे यहाँ भी हिरोशिमा पर बम गिरानेवाला विमान चालक क्यों नहीं हो सकता और हमारे यहाँ भी साम्राज्यवादी, युद्धवादी लोग क्यों नहीं हो सकते ।

---

1- मुक्तिबोध रचनावली :3: क्लाड ईथरली : पृष्ठ- 177

2- मुक्तिबोध रचनावली : 3 : क्लाड ईथरली : पृष्ठ- 177

मुख्यत: किस्सा यह है कि हिन्दुस्तान भी अमरिका ही है।[1] हमारे यहाँ का कलाकार, लेखक, कवि भी अमरिकी : ब्रिटिश तथा पश्चिमी यूरोपीय साहित्य तथा विचारधाराओं से अपनी आत्मा को शिक्षा और संस्कृति प्रदान करता है यही नहीं राष्ट्रीय अखबार और प्रकाशन केन्द्र भी अपना दृष्टिकोण वहीं से लेते हैं। अर्थात् जब हर स्तर पर हम अमरिकी होना चाहते हैं तब उसकी आत्मा की आवाज़ को हम अनसुना नहीं कर सकते। वह आवाज है क्लाड ईथरली। विश्व युद्ध के बाद की विभीषिका को जिस स्तर पर मुक्तिबोध के भीतर के कलाकार ने अनुभव किया उतना किसी लेखक ने नहीं किया। वह क्लाड ईथरली "देह रूप में न सही आत्मा की बेचैनी रखने वाले लोगों"[2] के रूप में मौजूद है। मुक्तिबोध का ईमानदार लेखक संकट को महसूस करता है कि पापाचार रूपी, शोषणरूपी डाकू केवल बाहर का आदमी नहीं अपने ही घर का आदमी है।[3] देश के प्रति ईमानदार आदमी व्यापक पापाचारों के प्रति व्यक्तिगत भावना भी तो रखता है। किन्तु व्यापक अन्याय का अनुभव करने पर उसका विरोध नहीं करने से उसके अन्त:करण में व्यक्तिगत पाप-भावना रहती है। यही एक जागरूक आत्मा की आवाज़ सुनने वाला व्यक्ति क्लाड ईथरली से समानता रखता है। मुक्तिबोध सजग लेखक को भी एक सी०आई०डी० मानते हैं जो अपनी ही स्क्रीनिंग करता और अन्तरात्मा के रहस्य को प्रकट करता है। अवचेतन के अन्धेरे तहखाने में पड़ी आत्मा की विद्रोही आवाज़ को सुनता है। अत: यह सिद्ध करता है कि सजग कलाकार ही क्लाड ईथरली है। "तुम सरीखे सचेत जागरूक सम्वेदनशील जन क्लाड ईथरली हैं।"[4]

---

1- मुक्तिबोध रचनावली :3: क्लाड ईथरली : पृष्ठ- 175
2- -- वही -- ,, पृष्ठ- 177
3- -- वही -- ,, पृष्ठ- 177
4- -- वही -- ,, पृष्ठ- 178

'क्लाड ईथरली ' मुक्तिबोध की शिल्प और कथ्य दोनों दृष्टि से प्रतिनिधि रचना है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आत्मा के संकट का अनुभव किसी भी देश में क्लाड ईथरली को जन्म देता है। यह एक ईमानदार तथ्य है फिर चाहे हम उसे अस्वीकार कर पागलखाने में ही क्यों न डाल दें।

## सतह से उठता आदमी

सतह से उठता आदमी मध्यवर्गीय गरीबी की विद्रूपता की और पशुतुल्य नग्नता की कथा है। गरीबी का अनुभवात्मक जीवन कठोर यथार्थ का अनुभव है। यह मध्यवर्ग जीने के लिए धर्म और दर्शन का सहारा लेता है 'गांधीवादी दर्शन गरीबों के लिए बड़े काम का है। वैराग्य भाव, अनासक्ति और कर्मयोग सचमुच एक लौह कवच है, जिसको धारण करके मनुष्य आधा नंगापन और आधा भूखापन सह सकता है और भयानक प्रसंगों और परिस्थितियों का निर्लिप्त भाव से सामना कर सकता है। मृत्यु उसके लिए केवल एक विशेष अनुभव है।'[1] इस जिन्दगी में घर की दीवारें सवाल लेकर उपस्थित होती हैं और चेहरा एक प्रश्न उपस्थित करता है, तुम मेरे लिए क्या कर रहे हो ? वह कुछ नहीं कर रहा। क्या करे वह ? वह छोटा आदमी है। उसमें हीनता ग्रंथि है उसकी यह अवस्था प्रकट सत्य है। इस जीवन को जीने के लिए उसे 'फिलासफी ' की जरूरत पड़ती है।' उसको फिलासफी की जरूरत थी, इसलिए कि उसका जीवन दुर्दशाग्रस्त था। अपने मन को मजबूत बनाने के लिए फिलासफी के प्लास्टर की जरूरत थी।'[2]

---

1- मुक्तिबोध रचनावली :3:सतह से उठता आदमी : पृष्ठ-206

2- -- वही -- ,, ,, पृष्ठ- 201

यह आदमी कृष्ण स्वरूप है । वह एक वर्ग का व्यक्ति है । जिसे अभाव में जीना है इसलिए वह सिद्धान्त बनाता है "पैर उतने ही पसारों जितनी चादर है ।"[1] इसे व्यवहार में लाने के लिए ही वह फिलासफी का सहारा लेता है "चाहिए, चाहिए, चाहिए ने सभ्यता को विकृत कर डाला है । मनुष्य संबंध विकृत कर दिए हैं । तृष्णा बुरी चीज़ है हमारा जीवन कुरुक्षेत्र है वह धर्मक्षेत्र है । हर एक को योद्धा होना चाहिए । आसक्ति बुरी चीज़ है ।"[2] किन्तु यही कृष्णस्वरूप बीवी की आँख चुराकर पैसे फटक लेता है । होटल में चाय पीने के लिए क्योंकि केवल ज्ञान काम नहीं आता " गरीबी एक अनुभवात्मक जीवन है कठोर से कठोर यथार्थ चारों तरफ से घेरे हुए है, एक विराट नकार, एक विराट शून्य सा छाया हुआ है । लेकिन इस शून्य के जबड़े में मांस-पेशी दांत और रक्तपायी जीभ है । कन्हैया इसे जानता है ।" तथाकथित बड़े लोग उनको हीन समझकर उसका अपमान कर जाते हैं । वह कुछ नहीं कर पाता परन्तु अपमान कर्ता का शत्रु अवश्य बन जाता है । माफ नहीं कर पाता, अतः उससे बचकर रहता है ।" दबना, कतराना और दूर खड़े होकर तमाशा देखना व बात सुनना, जहां महत्व की बात हो वहां सतर्क होकर बात गांठ से बांध लेना, उसका मानसिक जीवन है ।"[3]

यह कृष्ण स्वरूप आज खुशहाल है क्या सचमुच ? वह रामनारायण से डरता है । उस रामनारायण से जिसमें अजीब रहस्य है, एक अजीब भूतहापन है बाबापन है जिसे देखकर श्मशान की याद आती है । श्मशान की राख नंगी देह पर मलने वाले तांत्रिक योगियों की सी झलक दिखायी देती है ।"[4] यह रामनारायण यह नहीं जानता उसे क्या चाहिए

---

1- मुक्तिबोध रचनावली :3: सतह से उठता आदमी :पृ०-201

2- -- वही --- ,, पृष्ठ-201

3- -- वही --- ,, पृष्ठ- 207

4- -- वही --- ,, पृष्ठ- 205

बल्कि यह जानता है उसे क्या नहीं चाहिए । यह मध्य समाज से चिढ़ता है । इसमें औघड़ आदमी का खुरदरापन भी है यह मध्य समाज का भयानक विरोधी स्वयं भी गुण्डा नहीं है । वह तो सफाईदार भाषा में सिर्फ आलोचना करता है । यह स्वतंत्र चेता व्यक्तियों को जो वर्ग और परिवार से कटे हुए लोग हैं जो जोशीले पढ़ने लिखने वाले साथ ही कुंठित हैं उनको प्रेरणा देता है ।

कृष्णस्वरूप रामनारायण से डरता है । क्योंकि वह रामनारायण की अभिरुचि सम्पन्न मां से (जिसे रामनारायण अपने पिता की मृत्यु का कारण मानता है ) दुलार लेता है । इसी दुलार के परिणाम स्वरूप वह समाज में आज खुशहाल है । उनका दारिद्र्य धुल गया है । किन्तु वह अपने आपको रामनारायण से ओछा अनुभव करता है । क्योंकि वह "पूंजीवाद के विरुद्ध , धन सत्ता के विरुद्ध अपनी माता के विरुद्ध " सिद्धान्त और आदर्श के अनुसार प्रतिक्रिया जाहिर करता है । और कृष्ण स्वरूप अनासक्ति निष्काम कर्म, आत्मवश , रहने की बात करने के बाद भी अधःपतन का शिकार हुआ है । यह रामनारायण "परवर्ट " जीनियस " कहलाता है ।

ये दो चरित्र एक समाज के दो वर्ग के भीतरी पहलू हैं । एक सिक्के के दो पहलू । कृष्ण स्वरूप परिस्थितियों के वश में रहकर अपने सिद्धान्त बनाता है । जो कि आज के मध्यवर्गीय व्यक्ति की त्रासदी है वह सिद्धान्त और फिलासफी के सहारा अपने यथार्थ जीवन की कटुता को सहना चाहता है और समाज में दबता है । यह वर्ग वक्त पड़ने पर मौकों का फायदा तो उठाता है किन्तु फिर भी उसकी आत्मा उसे हमेशा हीन ही महसूस करती है । रामनारायण अपने ही वर्ग के विरुद्ध व्यवहार करता है किन्तु परिणाम कुछ नहीं निकलता । ये दोनों आज जिस स्थिति तक पहुंचे हैं । वह स्थायी नहीं है । यदि रामनारायण अपना व्यवहार बदल लें तो कृष्णस्वरूप का

क्या होगा ? वह फिर वहीं पहुंच जाएगा जहां से आया था ।

अत: कहानी के माध्यम से मध्यवर्ग के उस व्यक्ति का चित्रण हुआ है जो तिकड़म भिड़ाकर ऊपर तो पहुंच गया है किन्तु वहां वह सुरक्षित महसूस नहीं करता । जब चाहे समाज में वह ऊपर से नीचे पहुंच सकता है और अपने पुराने जीवन में न पहुंचे इसके लिए वह अपने से ऊपर वाले जिनका कि वह अहसान लेता है उनसे हमेशा भय खाता है और उनकी उपस्थिति उसे मानसिक स्तर पर और भी हीन बनाती है ।

---00000---

# उपसंहार

मुक्तिबोध की कहानियों के समग्र अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि मूलत: कवि होने पर भी मुक्तिबोध की कहानियों में उनकी रचनात्मक संवेदना की जटिलता प्रकट हुई है। कविता में जहां कहीं भी वह अपने विचारों, भावों को मूर्त नहीं कर सके उसे कहानी द्वारा प्रकट किया। कहानी में कविता की सी फैंटसी का निर्वाह करते हुए मानसिक संसार की जटिलताओं, उसकी उथल-पुथल का विश्लेषण मुक्तिबोध की कहानियां प्रस्तुत करती है। मानवीय सुख-दु:ख के चित्रण में सुकुमारता का भाव उनकी प्रारंभिक कहानियों में लक्षित किया जा सकता है, 'प्रश्न' 'दो चेहरे' आदि कुछ कहानियां उनकी उलझी, गुम्फित, गतिशील, संवेदना के अभाव के बाद भी मध्यवर्गीय जीवन के भीतरी संसार को, सोच को प्रकट करती हैं। कहानी के आन्दोलन से इतर मुक्तिबोध की कहानियां मध्य वर्गीय बुद्धिजीवी की भीतरी छटपटाहट की अभिव्यक्ति है। मध्यवर्ग का कलाकार किस अर्थ में नपुंसक होता है उसकी अभिव्यक्ति 'विपात्र' के माध्यम से हुई है। पारिवारिक दुरावस्था के प्रति अपना कर्तव्य न निबाह पाने वाले गृहस्थ की स्थिति 'काठ का सपना' में प्रकट हुई है। मध्यवर्गीय चरित्रों की बनावट का एक और बखूबी 'जंक्शन' कहानी के माध्यम से मुक्तिबोध करते हैं जहां वे अपने ही वर्ग को नंगा कर देते हैं और फिर उसे ढकने का भी प्रयास नहीं करते। जला कहानी भी सामंजस्य -असामंजस्य को उपस्थित करती है।

मुक्तिबोध की कहानियां सुख - संतोष से परे एक निश्चित सत्य की तलाश की कहानियां हैं जो बीजों के मध्य रहकर ही संभव है इसीलिए वह कहते हैं 'आई वान्ट टू बी इन द थिक आफ थिंग्स'। अभिव्यक्ति की बेचैनी उनकी कहानियों में भी प्रकट हुई है। उनकी कहानियां दो तरह के संकट को प्रकट करती है -- एक बुद्धिजीवी का संकट और एक समूची मानव

सभ्यता का संकट, बुद्धिजीवी का संकट 'ब्रह्मराक्षस का शिष्य' और 'विपात्र' में उभरता है । मानवता का संकट 'क्लॉड ईथरली' में देखा जा सकता है ।

मुक्तिबोध की कहानियों में एक बहस चलती है । कभी स्वयं मुक्तिबोध अपने पात्रों से बहस करते हैं । कभी वह दो पात्रों में बहस करवा देते हैं । एक अच्छे लेखक की यह पहचान होती है कि वह कितना तटस्थ रहकर अपने चरित्र और कथानक का निर्वाह करता है 'मुक्तिबोध की कहानियों में यह विशेषता है कि वे तर्क-वितर्क का निर्वाह बड़ी तटस्थता से करते हैं । मुक्तिबोध की कहानियां शिल्प और भाषा की दृष्टि से भी अपनी अलग पहचान बनाती हैं । क्लाड ईथरली इस सन्दर्भ में उनकी प्रतिनिधि रचना मानी जा सकती है । उनकी यह कथन शैली भी उन्हें कहानी के किसी भी आन्दोलन से अलगाती है ।

अन्त में हम कह सकते हैं कि मुक्तिबोध की कहानियां किसी आन्दोलन की उपज नहीं वरन् वह अनुभूति की छटपटाहट की सहज अभिव्यक्ति है । कवि के रूप में ही नहीं कथाकार के रूप में भी मुक्तिबोध का मुक्तिबोध पन सिद्ध होता है । तत्कालीन कहानीकारों की अनेक कहानियों के मेले में मुक्तिबोध की कहानियां अपने कथ्य और शिल्प की दृष्टि से अनूठी सिद्ध होती हैं । निःसन्देह मुक्तिबोध मूल रूप से कवि थे किन्तु कथा संसार में उनकी श्रेष्ठता की घोषणा उनकी कहानियों का कथ्य स्वयं करता है ।

---00000---

## परिशिष्ट

(क) भुक्तिबोध की रचनाएं

(ख) अन्य सन्दर्भ ग्रन्थ

(ग) अंग्रेजी की पुस्तकें

(घ) पत्रिकाएं

(ङ) लेख

## (क) मुक्तिबोध की रचनाएं


1. मुक्तिबोध रचनावली : भाग-एक : प्रथम संस्करण (1980) संपादक नेमीचन्द जैन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-110002 ।
2. मुक्तिबोध रचनावली भाग-3 : प्रथम संस्करण (1980) संपादक नेमिचन्द्र जैन : राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली- 110002 ।
3. मुक्तिबोध रचनावली भाग-4 : प्रथम संस्करण(1980) संपादक नेमिचन्द जैन: राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2
4. मुक्तिबोध रचनावली भाग-6 : प्रथम संस्करण (1980) संपादक, नेमिचन्द जैन : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-110002 ।
5. काठ का सपना : (1967) भारतीय ज्ञानपीठ , काशी।
6. नयी कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबन्ध (1980) : विश्वभारती प्रकाशन, धनवटे चैम्बर्स, नागपुर ।
7. नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र : (1971), राधाकृष्ण प्रकाशन, 2 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली ।
8. चांद का मुंह टेढ़ा है : (1975) भारतीय ज्ञान पीठ, काशी ।
9. एक साहित्यिक की डायरी : (1969) भारतीय ज्ञानपीठ,काशी ।
10. सतह से उठता आदमी : (1971) भारतीय ज्ञानपीठ, काशी ।
11. कामायनी एक पुनर्विचार : (1961) हिमांशु प्रकाशन, गंजीपुरा, जबलपुर ।

## (ख) अन्य संदर्भ ग्रंथ


12. गजानन माधव मुक्तिबोध जीवन और काव्य : महेश चतुर्वेदी (1976) राजेश प्रकाशन, कृष्णनगर दिल्ली ।

13. मुक्तिबोध की काव्य प्रक्रिया : अशोक चक्रधर (1975) दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली ।

14. छायावाद : : नामवर सिंह (1955) सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद वाराणसी ।

15. कविता के नये प्रतिमान : नामवर सिंह (1968) राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली ।

16. मुक्तिबोध का गद्य साहित्य : : मोतीराम वर्मा (1973) विद्यार्थी प्रकाशन, पश्चिमी आज़ादपुर नगर, दिल्ली ।

17. हिन्दी प्रतिनिधि कहानियाँ : (1977) संपादक डा० नामवर सिंह, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद

18. हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया: परमानन्द श्रीवास्तव (1965) कानपुर ।

19. कहानी: स्वरूप और संवेदना : राजेन्द्र यादव, नैशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली (1968)

20. समकालीन कहानी दशा और दृष्टि : धनञ्जय वर्मा, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद (1970)

21. आस्वाद के धरातल : धनंजय वर्मा

22. मुक्तिबोध -विचारक कवि, कथाकार : डा० सुरेन्द्र प्रताप (1978) नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।

23. प्रगतिवाद और समानान्तर साहित्य : रेखा अवस्थी (1978) दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया, लिमिटेड ।

24. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का इतिहास खण्ड-दो : पट्टाभिसीतारमैया : 1948 सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली ।

25. भारत वर्तमान और भावी : रजनीपाम दत्त (1956) पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली ।

26. प्रगतिवाद एक समीक्षा : धर्मवीर भारती (1949) साहित्य भवन लि०, प्रयाग

27. प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड : रांगेय राघव 1954, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा।

28. हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष : शिवदान सिंह चौहान,(1961) राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

29. प्रगतिशील साहित्य की समस्याएं : रामविलास शर्मा (1957) विनोद पुस्तक मंदिर -आगरा ।

30. तार सप्तक : (1972) भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली ।

31. 'रूप तरंग'- : रामविलास शर्मा : 1956 विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

32. आस्वाद के धरातल : धनंजय वर्मा

33. हिन्दी साहित्य के इतिहास : राम अवध द्विवेदी
की रूप रेखा

34. साम्राज्यवाद का उदय और : अयोध्या सिंह
अस्त

## (ग) अंग्रेजी की पुस्तकें

35. हिन्दी आफ इंडियन नैशनल कांग्रेस पार्ट-2 (1937-47)
पद्मा प्रकाशन, बम्बई ।

36. इंडिया टूडे : रजनी पाम दत्त

37. ट्रेड यूनियन मूवमेंट : स० स० माथुर

38. समकालेर कथा (बंगला) : मुजफ्फर अहमद

## (घ) पत्रिकाएं

39. राष्ट्रवाणी : फरवरी (1965)

40. नवभारत टाइम्स:-2 अगस्त 1964

41. आलोचना : जुलाई-सितम्बर- 1968 ,

42. नया खून : 2 जनवरी-1951

43. भारती : अक्टूबर, 1925

44. हंस : जनवरी-फरवरी : 1944

45. सारथी :: 1954

46. मुक्तिबोध -विनिबन्ध : प्रमोद वर्मा : स० हं० पब्लिकेशन
50 नर्मदा रोड, जबलपुर ।

### (छ) लेख


47. प्रगतिशील और साम्यवादी साहित्य : ई० एम० नम्बूदिरीपाद

48. स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य

49. साहित्य का उद्देश्य 'प्रेमचन्द, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद(1967)

50. मुक्तिबोध की गद्यकथा - निर्मल वर्मा ।


---00000---